विद्वद्वर डा. श्रीरवीन्द्रनाथ
टगोर कृत-

गीताञ्जलि

हिन्दीकारः—
श्रीगिरिधरशर्म्मा,
नवरत्नसरस्वतीभवन
झालरापाटन,
राजपूताना.

होलकर हिन्दीग्रन्थ माला पुष्प १६ वें रूपमें पुरस्कृत.

विद्वद्वर डा. रवीन्द्रनाथ टगोरकृत

गीताञ्जलि

हिन्दीकार

श्रीगिरिधरशर्म्माजी नवरत्न

काव्यालङ्कार.

प्रकाशक,

चि. ईश्वरलालशर्म्मा,

नवरत्नसरस्वतीभवन,

झालरापाटन,

राजपूताना.

प्रथमवार } संवत् १९८० सन १९२४ { मूल्य १)

मुद्रक,
रा. चिंतामण सखाराम देवळे,
मुंबई वैभव प्रेस, सँढर्स्ट रोड,
गिरगांव–मुंबई.

प्रकाशक,
पं. ईश्वरलालशर्म्मा, नवरत्न
सरस्वती–भवन, झालरापाटन,
राजपूताना.

समर्पण.

जो हिन्दीको प्रेम करता है, जो
साहित्याभिवृद्धिका अभिलाषी
है, जो मुझे चाहता है—उसी
किसी माईके लालके
द्वारा हिन्दीजनताको
सप्रेम समर्पित.

गिरिधर.

FOREWORD.

Rose is the Queen of Flowers, a thing of Beauty, a Joy for Ever, an irresistible emblem of Truth. The Rose in the garden delights the soul through the mind and the senses. But there are higher Roses, which waft their radiant fragrance to the soul direct. Rabindra Nath Tagore's *Gitanjali* is a veritable garden of such Roses. Their fragrance is distilled music and luminous visions in one. One hears the soft, soothing murmur of the lullaby in every thought and image as the prose-verse proceeds and its petals of many hues and formation unfold themselves to the entranced vision of the reader. To the connoisseur of literary gems, each verse is a magic reminder of some old fairy-friend of a foreign tongue. Notes and tones of Hafiz, Jami, Nizami are there; the mystic mosaic of Kabira, Chandidas, and other ancient and modern Samskrit, Hindi and Bengali poets is in it; English and other European singers rise up before the mind's eye in reading it; even modern Mahomedan Urdu poetry seems to send up its cultured delicacy from the inner heart of *Gitanjali, e.g.*, Verse 41, is a beautiful blossoming of the lovely Sufi bud which runs :—

इसी तमन्नामें उम्र गुजरी कि यार तू हमसे आ मिलेगा,
न मैंने जाना कि वस्ल क्या है न मैंने जाना विसाल क्या है ।

"My life is spent in the longing that thou, O Beloved, wilt come and meet me. Yet, I know not what enjoyment is, nor what union (with Divine) is !"

The Universal longing of the human soul to flow into and be united with the Divine in the bud. It has grown into a flower in Verse 41, as the lovely little girl expands and matures into the beautiful

woman, with all her wealth of curves and centours, and figures and fairness. So with the other gem-roses in the book.

Pandit Girdhar Sharma is a figure in the Hindi Literary world. He is *par excellence* the bard and scholar of Malwa, I almost said of romantic Rajputana. His soul is saturated with the religion of *Ahimsa*, Non-injury and Universal Compassion, of which M., M. K. Gandhi is the great apostle in the world of politics. Pandit Sharma has translated the *Gitanjali* into Hindi verse. Accurate and close is the translation fluent the language, fresh the phraseology. There is very little which a reader will lose who reads the Hindi and knows not English or Bengali enough to read the Poet first-hand. The reader who knows both Hindi and English or Bengali would marvel at the great skill with which Pandit Sharma has poured the softly intoxicating Bengal wine into the bottles of carefully constructed Hindi Verses.

In writing this Foreword, I conscientiously say that the translation is a gem in itself and a welcome addition to the stores of contemporary Hindi literature. I bid Pandit Sharma's venture godspeed in the full hope that the readers of it will in most cases bear out the truth of my feelings and that Gitanjali in its Hindi garb will reach their heart like a lovely bride bringing light and joy to the truly beloved-lover.

High Court,
Indore,
11th August, 1923.

J. L. JAINI, M.A., Bar-at-Law,
Chief Justice High Court and Law
Member to Indore State.

It was with great pleasure that I read the Hindi translation in manuscript of Gitanjali by the well-known Hindi Poet and Scholar Pandit Girdhar Sharma. He has accomplised the task very creditably. The clear lucid style in which he has expressed the inimitable verses of one of India's greatest poets, Rabindranath Tagore makes the Hindi verses intelligible to all classes of Hindi readers. The flowing rhythm and variety of versification make the reading of the lyric pieces pleasant and entertaining. There is no monotony often found in modern Hindi poetry. In fact, the Hindi poet has not only caught the spirit but even the form in many passages. Translations naturally miss the beauty of the original, but the Pandit has kept to it as close as the Hindi language could give expression to. By comparing the rendering with the original the reader can easily form very good opinion of the attempt. It is praise-worthy and highly commendable. The work has been executed with uncommon fidelity and it deserves a very wide circulation. It bids fair to be one of the best translations that have been tried of that exquisite collection—Gitanjali Ideas and reflections of the original have scarcely been lost in the version. The translator has tried his best to maintain the serious cast and gravity of thought with the light rhythmical structure of the original lines and the translation will greatly help the readers who do not know Bengali to enter into and rightly understand the deep religious sentiments which Gitanjali conveys. No attempt has hitherto been made in Hindi on a large scale to

familiarise the mystic conceptions which Gitanjali has stored in its charming expressions and we feel assured that the Hindi readers will now have the 'open sesame' to all that mysticism means in poetry. In the words of Platinus, 'it is the flight of the Alone' and this ascension to the one transcendental appeals to the Eastern mind the resting as it is for the knowledge of the Absolute and Union with Him—the highest aspiration and the ultimate goal of the mystics, and so it is to be hoped that when the book is published it will be accepted as favourably as the original work has been.

Indore, 10 August 1923.

I. W. JOHORY, M.A., B.D.,
Prof. Indore Christian College.

श्रीहरिः

मेरा वक्तव्य

गीताञ्जलिके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह पुस्तक विश्वसाहित्यमें अपना सुचिरस्थायी स्थान प्राप्त कर चुकी है। इसने भारतका गौरव जगपर छाया है, विद्वत्कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरको अमर बनाया है, इतना ही क्यों, पूर्व और पश्चिमके बड़े-बड़े विद्वानोंका हृदय मिलाया है। मूल गीताञ्जलि बङ्ग भाषामें है, बहुतही बढिया है, गानका माधुर्य तो अनुपम है; अनुभवका विषय है, कहनेका नहीं। गीताञ्जलिके भाषान्तर; अंगरेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओंमें तक हुए हैं और उनसे साहित्यप्रेमियोंने आनन्द उठाया है। ये सब भाषान्तर गद्यभाषान्तर हैं। मैंने यह भाषान्तर पद्यमें किया है। एक गीतमय पुस्तकका भाषान्तर गेयतापूर्ण पद्योंमें करना एक कठिन व्यापार है और इसका मुझे पद-पद पर साम्हना करना पड़ा है। सात वर्षके पश्चात् मैं इसे पूर्ण कर पाया हूं तथापि मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं इसमें सफल होगया। यदि **गीताञ्जलिकी आत्मा** इसमें व्यक्त हुई हो, गूढ़-प्रगूढ व्यङ्गादिका इसमें भी कुछ चमत्कार हो और शब्दार्थकी किसी प्रकारकी छटा हो तो मेरे ज्ञानदाता गुरुजनोंकी कृपाका फल है। बाकी **मेरी प्रसन्नता तो इसीमें है कि जगतभरकी भाषाओंमें सर्व प्रथम पद्यमय भाषान्तर यह हिन्दीगीताञ्जलि है और मैंने यथाशक्ति इसके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीसरस्वतीका** पूजन किया है, बङ्गीय उद्यानके कुसुम लेकर यह हिन्दी हार गूंथा है और गिरादेवीके अर्पण किया है। यहां पर मैं डा० शिरोमणि हाजराको विस्मृत नहीं कर सकता जिन्होंने मुझे बङ्ग भाषामें प्रविष्ट किया था। मनुष्य कृतज्ञताके पाशमें बँधा हुआ प्राणी है। मैं उससे पृथक् नहीं हो सकता। मेरे पर तो अनेकोंके अनेक

उपकार हैं और उनका केवल नाम निर्देशभी करूं तो कर न पाऊंगा, अत एव सबको प्रभुकी विभूतियां मान मेरे आन्तरिक वन्दन करता हूं। तथापि कुछ महानुभावोंके प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। इस लिये नहीं कि मैं उनसे उऋण होना चाहता हूं, उऋण होही नहीं सकता, किन्तु इस लिये कि जैसा मेरे हृदयमें इनका स्मरण है वैसाही स्मरण मेरी हृदय-स्थानीय पुस्तकके साथ भी रहे। सबसे पहले मेरे बाल्य स्मरणोंमें मेरी परम पूजनीया पितामही श्रीमती **हीरांकुंवर** देवीको स्मरणाञ्जलि समर्पित करता हूं जिनकी पवित्र गोदीमें बैठे हुए मैंने भांति-भांतिकी हितशिक्षा लाभ की है, और, इन्हींके साथ श्रीमती **राजबाई** देवीको जिनके द्वारा दी गई श्रीअन्नदाता **अग्रासिंहजीके** प्रसादकी मिसरी अब तक मेरे ओठोंपर माधुरी बरसा रही है। परमपूज्य भट्ट श्रीजडावजी, प्रश्नवर कान्हजी, विद्वद्वर **श्रीद्वीरेश्वरजी** शास्त्री, और महामहोपाध्याय **श्रीद्गङ्गाधरजी** शास्त्री, सी. आई. ई. के चरणोंकी, अपने पूज्य पिता **श्रीब्रजेश्वरजीके** साथ ही स्मरण–पूजा करता हूं जिनके द्वारा मुझे दो अक्षरकी प्राप्ति हुई।

श्रीमन्महाराजाधिराज महाराजराणा सर **श्रीभवानीसिंहजी बहादुर** के. सी. एस. आई., एम. आर. ए. एस., एम. आर. एस. ए., प्रजासर्वस्व, प्रजावत्सल के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेको तो मुझे खोजे हुए भी शब्द नहीं मिलते, मैं जो कुछ हूं सब कुछ इन्हींका प्रताप है—**गिरिधर-शर्माका जीवन** इन्हींका घड़ा जीवन है। प्रभुके प्रति मेरी आन्तरिक कामना है कि मैं और मेरा खानदान समुज्ज्वल मुखसे कह सकें कि **हमारा जीवन उस नरेशके द्वारा संघटित हुआ है कि जो नरेश आदर्श मह पुरुष है।** प्रभु मेरे इस नरेशकी उच्च भावनाओंको सफल करे और इन्हें चिरायु देवे। महाराज कुमार श्रीराजेन्द्रसिंहजी, भँवरजी श्रीवीरेन्द्र सिंहजी और कँवरानीजी श्रीहीरांकुंवर देवी अपने परिजनों सहित आनन्द मङ्गल भोगें। तथास्तु।

यहांपर हमारी झालावाड़के व्यापारी वर्गके शिरमोर राजा व प्रजाके हितैषी और भारतके सुप्रसिद्ध व्यापारी बिनोदीराम बालचन्दजीकी फर्मके मालिक मेरे मित्र श्रीयुत लालचन्दजी सेठी वाणिज्यभूषणको धन्यवाद देता हूं कि जिनकी बार बारकी प्रेरणासे यह पुस्तक अबभी तैयार हो सकी।

मैं; प्रोफेसर रुद्र, सज्जनोत्तंस एंड्रयूज और पंडितवर महावीर प्रसादजी द्विवेदीको धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस पुस्तकको पूर्ण करनेके लिये उत्साहित किया। अन्तमें श्रीहरिसे प्रार्थना है कि यह पुस्तक हिन्दी जगत् और मेरे देश तथा मानव समाजके लिये कल्याणकारिणी होवे।

नवरत्न-सरस्वती-भवन,
झालरापाटन.
पौष शुक्ल २ सं. १९८०

गिरिधर शर्मा।

ॐ तत्सत्

गीताञ्जलि

(१)

तेरी ऐसी हरि ! लीला है, अमर अनन्त मुझे करता है,
क्षणभङ्गुर घट खाली कर कर, नव नव जीवन-रस भरता है।
कितने बाग बगीचे उपवन, कितने शैल नदी तट कानन,
गुँजा रहा कर कर वंशीधुन क्या क्या स्वर तानें रचता है।
यह वंशी छोटी है कैसी, धुन इसकी होती है कैसी,
स्वरतानें तू रचता कैसी, मम वचन न कुछ कह सकता है।
तेरे इस पीयूष परससे वाणी नाच रही अति मुदसे,
निकल चला हिय बाहर हदसे, पुलक पुलक सब अँग उठता है
रातदिवस यह तेरा देना, लघुहाथोंसे मेरा लेना,
जुगजुग बीत गये बीते ना, और इन्हें अवकाश सदा है॥

(२)

गान सुना तेरा मुझको तू जब तू मुझसे कहता है,
होकर हृदय प्रफुल्लित मेरा गर्व अधरयुत गहता है।
दोनों आँखें छल-छल करती भर आती हैं बारंबार,
बाँध टक-टकी अनिमिष रहती तेरे मुखकी ओर निहार।

प्राणोंमें कटुता कठिनाई जो मम है गल जाती है,
मधुर अमृतमय मृदुल गानका सहज रूप पा जाती है।
मेरे साधन आराधन सब बनकर मुक्त विहङ्गसमान—
विधि-निषेध बन्धन तज सुखसे उड़ना चाहें करते गान।
राग-रंग मेरे गानेका तुझे तृप्त हरि करता है,
तुझको बहुत सुहाता है वह, तुझे बहुत ही भाता है।
जान रहा हूं इसी गानके बलसे तव सन्मुख आया,
मन दे जिसको पा न सका सो गान सुना तव पद पाया।
अपनी दशा भूल जाता हूं जब गाता हूं स्वर ले गान,
स्वामी को, मालिक को, प्रभुको भी, कह उठता हूं सखे, सुजान।

(३)

तू ऐसा कह कैसे गाता ? स्तब्धगुणी भी सुन हो जाता,
स्वर-प्रकाश जगभीतर छाता, स्वर-समीर नभमें मँडराता,
टूटे पत्थर ओट न रहती, वेगसहित स्वरसुरधुनि बहती।
चाहूं ऐसे स्वरमें गाऊं, पर न कंठमें वह स्वर पाऊं।
कहनेकी इच्छा रखता हूं, तोभी विवश न कह सकता हूं।
प्राण विचारे हार मानकर, रोते हैं मेरे ये धर धर
चहुंदिश जाल स्वरोंका बुनकर, फंदेमें डाला मुरलीधर ॥

(४)

प्राणेश्वर ! मम तनु-संघात, तुझसे व्याप्त रहे दिनरात,
सदा सोच यह मनमें बात, शुचि रक्खूंगा अपना गात।

मनमें तू है परम ज्ञान, इसी बातपर रखकर - बता ?
मिथ्या पास न आने दूंगा, सच्चाईकी मूर्ति बनूंगा।.१
हियमें तेरा है अचलासन, मान करूंगा अच्छे शासन,
छल प्रपंच पाखंड अमङ्गल, द्वेष आदिको दूंगा दल मल ।
निर्मल प्रेम-ज्योतिं प्रकटाना, सदा रहेगा मेरा बाना,
इसमें चूक न होने दूंगा, सावधान दिनरात रहूंगा ।
सभी काममें है तव शक्ति, जान सार यह धार सुभक्ति,
काम करूंगा सब निरधार, तेरा ही ज्यों होय प्रचार ॥

(५)

बस छिनभर तू समीप अपने मुझे बैठने दे दिलवर,
जो कुछ काज आज करने हैं उनको मैं लूंगा फिर कर ।
तेरी सूरतको देखे बिन हृदय चैन नहिं पाता है,
काम करूं तो छेह न आता अतट जलधि बन जाता है ।
सुरभि-पूर्ण निश्वास छोड़ता मधु मेरे द्वारे आया,
आता-जाता कुंजलतामें भ्रमर गूंजता मद-छाया ।
आज बैठ एकान्त-स्थलमें लखने का दिन है मन-भर,
गाऊंगा जीवन-अर्पणके गान, देख नीरव अवसर ॥

(६)

चुनले मुझको रसिक ! शीघ्रही अब बिल्कुल देरी मतकर,
कहीं धूलमें मिल नहिं जाऊं रहता है यह मुझको डर ।
ना जानूं तेरी मालामें स्थान कुसुम यह पाय-न-पाय,
लगें नख-क्षत तेरे इसको इतना तो सौभाग्य कहाय । चु० ।

प्राणोंमें कटुता कठिन हो जावे छा जावे चहुं दिश अंधेर,
मधुर अमृतमयी पूजाकी निकल जाय पा सकूंन हेर । चु० ।
मेरे साधन कुछ इसकी रंगत है या जैसी कुछ इसकी गंधः—
विधि सुसमय रहते निजसेवामें इसका तू करले सम्बन्ध ॥ चु० ॥

(७)

यह छोड़ता सब भूषणोंको आज मेरा गान है,
रखता न तेरे साम्हने निज साजका अभिमान है ।
होती मिलनमें ओट है यदि बीचमें भूषण पड़ें,
उनके मुखर झंकारसे तव दूर होता भान है ।
मम कविपने का गर्व तेरे साम्हने अनुचित निरा,
बैठा रहूं कविराज ! तेरे चरणमें यह ध्यान है ।
करके जतन जीवनमयी बंसी सरल जो घड़ सकूं
सब रंध्र भरदे निज सुरोंसे प्रार्थना भगवान है ॥

(८)

वरवेशमें तू साजदे नरपाल-सा जिस बालको,
मणि-रत्नकी माला पिन्हादे कंठमें जिस बालको,
वह भूल जाता है सभी आनन्द अपने खेलका,
भूषण वसन बनते विषमतर भार-से उस बालको ।
लगजाँय दाग न धूलके, बस टूट जाँय न रत्न ये,
मिल जाय वेश न खाक में, रहता यही भय बालको ।
दिनरात चिन्ता है सताती वेश-भूषाकी उसे,
धीरज न उठते-बैठते मिलती कभी उस बालको, ॥ वर० ॥

इसभांति नृपसम सजदिये होगा भला क्या मा बता ?
मणिरत्नकी माला पिन्हाये हो खुशी क्या बालको ?
आरोग्यदायक धूप, रज, जल, वायु, स्वच्छाकाशमें—
मुक्त-पथपर, खेलना जो हो नसीब न बालको।
होते जहां मेले मनोरम विश्व मानव वृन्दके,
होते अनेकों खेल हैं सब भाँति सुखकर बालको,
चारों दिशामें गूंजते बाजे हजारों स्वर-सने,
उसठौर मिलता है नहीं अधिकार कुछ उस बालको ॥ वर० ॥

(९)

अब बोझ अपने सीस पै अपना उठाऊंगा नहीं,
कंगाल निजके द्वारका निजको बनाऊंगा नहीं ।
रख बोझ तेरे चरणपै निश्चिन्त हो दिलमस्त हूं,
मदहोश बन कर मैं रहूंगा कुछ सुनाऊंगा नहीं ।
छूती जिसे है वासना मेरी, वही निजकी प्रभा—
खो बैठती है वस्तु, ज्यादा मैं बताऊंगा नहीं ।
लाती अशुचि जो वासना निज हाथमें, चाहूं न सो,
जो प्रेमका तेरे न हो उसको सँगाऊंगा नहीं ॥

(१०)

जहां अधम-से-अधम, नीच-से-नीच, दीन-से-दीन बसें:—
सबसे पीछे, सबसे नीचे, सबमें तव पद वहीं लसें ।
जब प्रणाम मैं करता हूं तो किसी जगह रुक जाता है,
तव पद लसें जहां दीनोंमें वहां प्रणाम न आता है ।

दीन-दरिद्र-अधम-पामरके अपमानोंमें नहिं जाता,
सबके पीछे सबके नीचे सबमें तव पास न आता।
होकर भूषण-वसन-हीन तू दीन वेशमें जहां फिरे—
सबके पीछे, सबसे नीचे, सबमें गर्व न वहां गिरे।
जा अनाथ जनके घरपर तू करता है जिस ठौर सनाथ—
सबके पीछे, सबसे नीचे, सबमें: मम हिय नमे न नाथ ॥

(११)

पूजा-पाठ, भजन-आराधन, साधन सारे: दूर हटा,
द्वार बन्द कर देवालयके कोनेमें क्या है बैठा !
अन्धकारमें छुप मन-ही-मन किसे पूजता है चुपचाप,
आँख खोल, धर देख, यहांपर कहां देव बैठा है आप ?
वह तो जा पहुंचा उस थलपर भूमि सुधारें जहां किसान,
मार्ग ठीक करनेको त्योंही पत्थर फोडें श्रमी महान, ।
गरमी-सरदीमें उनके सँग मिट्टीमें करता है काम,
तूभी वसन छोड़ शुचिसारे आजा तजकर निज आराम।
मुक्ति ? मुक्ति तू कहां पायगा ? मुक्ति बता तो है किस ठौर ?-
स्वयं सृष्टि बन्धनमें आया सबके सँग जब प्रभु सिरमौर।
ध्यान छोड़दे, तज कुसुमोंको, त्याग वसन, लगनेदे धूल,
उससे एक—कर्मयोगी बन—होजा, बहा स्वेद सुखमूल।

(१२)

मम प्रवास होरहा समयसे भारी दूरीके पथपर,
पहले-पहल चलाहूं मैं चढ़ प्रथम-ज्योतिके शुभ रथपर।

कितने कितनेही लोकोंके जंगल-पर्वतके भीतर,
ग्रहमें, ताराओंमें, अङ्कित मार्ग-चिन्ह आया हूं कर ।
तेरे पास पहुंचना सहज न बड़ा कठिन है, बड़ा विकट,
मधुर गान पर एक मात्र हैं साधन पहुंचानेका झट ।
घरघर फिरता फिरे अन्तमें फेरीवाला घर आवे,
बाहर भुवन भुवनमें ढूंढे हिय-ठाकुर हियमें पावे ।
कितने पथपर चलचल देखी कितनी बाजू आँखें खोल,
'इसी स्थानपर तू है' अबतो बोलूंगा मैं बलसे बोल ।
कहां ? किधर तू ?, इस रोदनके बहे अश्रु चौधारों जाँय,
'मैं ईश्वर हूं' के प्रवाहमें ये जगके जन गोते खाँय ।

(१३)

यहां गान जो गाने आया गा न सका अबतक वह गान,
केवल आज स्वरोंको साधूं, चाहूं केवल करना गान ।
मुझसे वे स्वर नहिं लगते हैं, मुझसे बँधते नहिं वे बोल,
केवल प्राणोंमें व्याकुलता छाई गानेको जी खोल ।
फूल अभी वह खिल न उठा है केवल चलता है पवमान; य०
मैंने उसका मुँह नहिं देखा, सुने नहीं उसके कुछ बोल,
केवल सुनता हूं छिन छिनमें उसके पगकी धुन अनमोल,
मेरे द्वारेके आगे हो आता जाता है वह जान । यहां गान०
दिनभर पूरा करके केवल बिछा सका हूं मैं आसन,
घरमें दीपकभी न जलाया उसे करूं क्या आवाहन,
दर्शनकी भारी आशा है उसको किन्तु सकाहूं पा न । यहां० ॥

(१४)

मैं चाहता हूं प्राण-पणसे पूर्ण हो बहुवासना,
रक्षा प्रभो तू कर रहा उनसे मुझे वंचित बना ।
अत्यन्त दारुण तव कृपा मेरा यही संचित लसे,
जीवन सभी है संगठित मेरा हुआ इससे कसे ।
मांगे बिना ही कर रहा है दान मुझको प्राण-बल,
आकाश, मन, तन, ज्योति,-सुन्दर-स्वास्थ्य, पृथ्वी, वायु, जल ।
इस दानका सत्पात्र तू दिनदिन बनाता है मुझे,
अतिलालसाके कष्टसे प्रति छिन बचाता है मुझे,
लक्ष्यकर तव मार्गको मैं भूल जाता हूं कभी,
चूके बिना सीधा चलाही नाथ आता हूं कभी ।
मैं क्या कहूं मैं क्या कहूं कैसी निठुरता तू करे !
मम साम्हनेसे दूर होता क्यों न जाने तू हरे !
जाना दया तेरी मुझे तू फेर देना चाहता,
जीवन कियेसे पूर्ण मिलने योग्य करना चाहता,
मुझ पै सभी सब भाँति अक्षय-सौख्य छाना चाहता,
सन्देहके अति विषम दुखसे तू बचाना चाहता ॥

(१९)

मैं हूं केवल इस जगह, गानेको तव गान ।
जगत सभामें दे मुझे, तू थोडासा स्थान ।
नहिँ मैं तेरे जगतमें, आता हूं कुछ काम ।
रागरंगमें मगन हूं, जो निकाम सुखधाम ॥

निशिमें नीरवधाममें, तव पूजाके काल।
गाऊं तेरे साम्हने, आज्ञा दे महिपाल॥
नभलाली हो भोरमें, बजे बीन स्वरतान॥
'दूर रहूं मैं तव न' यह, दे मुझको सन्मान॥

(१६)

विश्वानन्द यज्ञमें मुझको मिला निमन्त्रण सुख-कानन,
धन्य हुआ यह, धन्य हुआ यह, धन्य हुआ, मानवजीवन।
घूम घूम कर रूपपुरीमें साध मिटाते फिरें नयन,
सुनसुनकर गंभीर सुरोंको होते हैं ये श्रवण मगन।
मुझको भार मिलाहै तेरे उत्सवमें बंसी छेड़ूं,
प्राणोंके उल्लास हासको एक एक सुरमें भर दूं।
जाकर तुझे सभामें देखूं हुआ समय है क्या इस छिन,
यही निवेदन है मेरा मैं जाऊंगा सुनकर जय धुन।

(१७)

हाथों बँधूंगा प्रेमके बैठा हुआ हूं इसलिये,
देरी बहुत है होगई अपराध मैंने बहु किये।
जो कायदे कानून आते बाँधने मैं हट रहूं,
जो दंड होगा भोगलूंगा तोषसे दृढमन किये। हा०।
निन्दा जगत मेरी करे जो मिट नहीं सकती कभी,
मैं नीच सबसे हो रहूंगा सीस पर निन्दालिये।
जो वक्त बीता होगये बाजार सारे बन्द हैं,
आये बुलाने जो, सभी वे रोस करते फिर गये। हाथों०।

(१८)

बादल पर-बादल घिरआते अन्धकार बहु बढता है,
घरके बाहर मुझे अकेला क्यों तू बिठला रखता है।
किये कामके दिनों काम है नाना लोगोंके रह संग
आज भरोसा कर बैठा हूं पाऊंगा तेरा सत्संग। घर०।
तिरस्कार करके मेरा जो तू न मुझे देगा दर्शन,
तो मेरा घन-घोर समय यह क्योंकर प्रिय होगा पूरन।
बड़ी दूरसे आँख खोलकर केवल लखता रहता हूं,
झंझानिलमें पड़े प्राण ये विलख रहे सो सहता हूं। घर०।

(१९)

मौन धारकर यदि न तू, कहता है कुछ बात।
हियमें तेरी मौन को, भर रक्खूंगा तात॥
ज्यों रजनी तारा भरी, अवनत हो अनिमेष।
स्तब्ध रहूंगा धैर्यसे, मैंभी त्यों निःशेष॥
अन्धकार मिट जायगा, होगा अवश प्रभात।
पौ फट सुवरन धारमें प्रकटेगी तव बात॥
तब मेरे खग-भवनमें, छावेगा तव गान।
फूलेगी मम वनलता सुनकर तेरी तान॥

(२०)

मेरा चित्त ठिकाने नहिं था जिस दिन खिले कमलके फूल,
पुष्प करंडी भर न सका मैं हुई अजानेमें क्या भूल।

बीच-बीचमें व्याकुल हो हो लखलख सपने चौंका मन,
मन्द मधुर सौरभ आती है, है दक्षिणका कहां पवन ?
उस सौरभके लिये उदासी होकर घूमा देस विदेस,
नव-वसन्तमें उसे खोजता मनो सांसले भुवन असेस ।
किसे ज्ञातथा ? नहीं दूरकी यह सौरभ तो मेरी है,
हृदयबागमें प्रकट हुई सो महा माधुरी मेरी है ।

(२१)

अबतो चलाना चाहिये इस नावको जलमें मुझे,
जाता समय ज्यों तीरबैठे वेदना होती मुझे ।
सम्पत् लुटाकर कुसुमकी ऋतुराज तो बस चलदिया,
बिखरे कुसुमकी डालियां ले, क्या करूं कहिये मुझे ?
उठती तरङ्गों-पर-तरङ्गें जल उछल छलछल करे,
गिरगिर विजन-तरु-मूलपर पत्ते बहुत-से मरमरे ।
शून्य-मन हो तक रहा किस ओर है ? बस नभ-पवन,
इस ओरकी इस मुरलिकाके नादसे शिहरा अरे !

(२२)

अब सावनघन गहरा छाया; धीमे-से पर रखता आया,
रजनी-सम नीरव हो आया, सबकी आँख बचा तू आया, अब०
आँख खोलता नहीं प्रभात, वृथा पुकार रहा है वात,
ढँका सुनील-गगनका गात, मेघोंने परदा छिटकाया, अब०
कूजन होता नहिं काननका, द्वार बन्द है भवन-भवनका,
कौन पथिक है निर्जनपथका, एकमात्र जो तू है आया, अब०

तू है ? मित्र अरे ! हे प्रियतम ! खुला हुआ है यह आलय मम,
मुख दिखला कर मुझे स्वप्न-सम, चले न जाना जान पराया। अब०

(२३)

तेरा आज सखे अभिसार, झड़की निशिमें है सुखसार ।
नभ रोता है हो हताशसम, नींद न आती है दृगमें मम,
द्वार खोलकर मैं हे प्रियतम !, देखरहा हूं बारंबार, तेरा०
बाहर न कुछ देख सकता हूं, किधर मार्ग तव खोज रहा हूं,
दूर कौनसे नदीतीर पर, अन्धकारकी किस श्रोणीपर,
होता है तव पद संचार ? सखे, मित्र, प्रिय, प्राणधार !

(२४)

यदि दिवस पूरा होगया हो वायु चलता हो नहीं,
जो क्लान्त होकर विहगका गण गान करता हो नहीं,
तो डाल दे मुझपर घना परदा अंधेरेका प्रभो,
जैसे जमींपर डालता है नींदकी चादर प्रभो,
जैसे सुलाता है कमलको रातके सुखसे प्रभो ।
पाथेय सारा पंथमें ही पथिकका हो लुट गया,
सब वेश-भूषा धूलमें अपमानसे हो मिल गया,
और जिसका होगया हो क्षीणबलः उसको प्रभो !
दूर कर दारिद्र-लज्जा दे नया जीवन प्रभो,
रख तव कृपानिशि-ओटमें सुन्दर सरोरुहसम प्रभो ।

(२५)

बीचबीचमें जब कभी, सन्नाटा आ पास ।
अन्तरके आलोकको छिनमें करता ग्रास ॥
तिल तिल चलती भ्रान्ति जब, आती दे पदमंद ।
तव पूजाका रंग त्यों, हो जाता सब बंद ॥
तबभी करता हूं न भय, रखता हूं बिसवास ।
तबभी तेरी ओरसे रहे जागरित आस ॥
उस थकानकी रातमें, तुझपर बोझा डाल ।
पूर्ण हृदय अर्पण करूं, तव पदमें भय टाल ॥
इस अलसाये हृदय पर, मत रख पूजा भार ।
सोनेदे सुख नींदसे, जगके पालन हार ॥
नहीं चाहता हूं कभी, तव पूजा हो दीन ।
मैं होना नहिं चाहता, जगभीतर यों हीन ॥
आखोंपर तू दिवसके, छोड़े सुखकर रात ।
रात पूर्ण कर नाथ फिर करता सुखद प्रभात ॥

(२६)

आबैठा था पास वो मैं न जागी, आया तेरे हाथ क्या ? नींद दुष्टे ।
वो आया था शान्त नीकी निशामें, रम्या वीणा हाथमें ले बजाता ।
उसकी रागें स्वप्नमें छारही हैं, जागे देखूं मैं अबाची हवाको ।
अन्धेरेमें गन्ध फैला अनूठी, छादेती है जो मदोन्मत्तताको ॥
जाती है क्यों व्यर्थ ही रात मेरी ? पाती हूं क्यों पास पाभी न उसको ?
सीनेसे क्यों हार उसका न छूती ? योंभी स्पर्शानन्द क्यों मैं न पाती ?

(२७)

ज्योति कहां है उसे जगाओ, ज्योति कहां है उसे जगाओ,
विरहानलसे उसे जलाओ, ज्योति०
दीपक है पर नहीं शिखा है, अहो यही क्या भाल लिखा है,
हिय इससे मरना अच्छा है, विरहानलसे दीप जलाओ।
कहे वेदनादूती प्राण !, तेरे लिये जगें भगवान,
न गिन घोर निशि घनान्धकार, बुला रहे कर प्रीत्यभिसार,
दुखदे रखते तेरा मान, तेरे लिये जगें भगवान।
गया मेघसे आसमान भर, परदा तमका पड़ा नयनपर,
कहां न जाने बहुत दूरपर, होता गान गभीर मनोहर,
मार्ग खोजते प्राण विकल तर, परदा तमका पड़ा नयनपर।
ज्योति कहां है उसे जगाओ, ज्योति कहां है उसे जगाओ,
विरहानलसे दीप जलाओ।
मेघ पुकार रहा गर्जन कर, हवा पुकारे सनसन कहकर,
समय गये होगा नहिं जाना, रह जावेगा बस पछताना,
निकष-श्याम-निशि तिमिर हटाओ, प्रेमदीप दे प्राण जलाओ॥

(२८)

बड़े कड़े बेड़ी बन्धन हैं उन्हें छोड़ना मैं चाहूं।
जब जाता हूं उन्हें तोड़ने व्यथा बहुत ही मैं पाऊं॥
सब प्रकार मैं चाह रहा हूं हो जाऊं पूरा स्वाधीन।
पर ऐसी आशा करनेमें होता हूं लज्जामें लीन।

तू ही मेरे जीवनका है सखे बड़ा भारी कल्यान ।
जान रहा हूं तेरे ऐसा और न कोई धन सुखखान ॥
तोभी घर सजनेकी झूठी सामग्री छोड़ न पाऊं ।
जब जात हूं उन्हें छोड़ने व्यथा बहुत ही मैं पाऊं ॥
मुझे ढांक मनकी चादर यह मैली मिट्टीमें छाई ।
बार बार सब जराजीर्ण हो फटी मौत कड़वी पाई ॥
महा घृणा है मुझको इससे पूरी पूरी प्राणोंभर ।
तोभी इसको चाह रहा हूं प्यार कर रहा हूं हरहर ॥
देना है मेरे सिर भारी विफल यत्न सारे होते ।
चालें ऐसी पड़ जाती हैं घोर कृत्य छुप छुप होते ॥
जो कुछ मेरा हरे श्रेय है जबजब मैं उसको चाहूं ।
'हो जावे मंजूर प्रार्थना कहीं न !' मनमें भय खाऊं ॥

(२९)

मैं ढांक देता हूं जिसे निजनाम देकर प्यार में,
हो वह विकल रो रो मरे इस नाम-कारागारमें ।
ज्यों नामकी दीवार चारोंओर नभतक मैं चुनूं,
निज रूपको देख न सकूं दीवारके अँधियारमें ।
धूल पर चुन धूलको दीवाकरको ऊंची करूं,
पोल रहते ही पड़े जा चित्त चिन्ता-भारमें ।
ज्यों ज्यों मरम्मत ऊपरी करके दिखाऊं मैं भभक,
निज सत्यरूप विलोकनेकी दृष्टि जाता हार मैं ।

(३०)

अकेला ही चलाथा मैं तुझसे मिलने प्रभो,
चुप चाप चला कौन तममें साथही लगा ।
छोड़ना मैं इसे चाहूं, हट जाऊं, कहीं गई=
आपत्ति टल मेरी, पै पाऊं मैं संगही उसे ।
उड़ा ही चलता साथ, उड़ाता धूलि भूमिकी,
बनाता बीचमें बातें अपनी बातबातमें ।
और कोई नहीं है हा मेरा निर्लज्ज रूप है,
साथ ले इसको, आते, लजाऊं तव द्वार पै ।

(३१)

बन्दी बड़ा जकड़ा तुझे किसने बतादे तू मुझे ?
बाधा कड़ी जंजीरसे मेरे प्रभूने ही मुझे ।
सबसे बड़ा हो मैं रहूंगा सोचता था चित्तसे,
अपना खजाना भर रहा था राजके ही वित्तसे ।
नींद जब आई तभी प्रभु सेजपै जा सोगया,
जो जाग देखा कैद खाना निज खजाना हो गया ।
बेड़ी घड़ीं ये वज्रसी किसने कड़ी वन्दी बता ?
मैंने स्वयं बहु यत्नकर इनको घड़ा क्या दूं पता ।
यों सोचता था तेज मेरा विश्वपर छा जायगा,
स्वाधीन केवल मैं रहूंगा दास जग बन जायगा ।
दिनरात मिहनत कर कड़ी लोहा तपाया खूबही,
जंजीर घड़नेको हथोड़ा घन चलाया खूबही,

तैयार जब वे होगईं मजबूत भारी बेडियां,
मेरे पगोंमें ही पड़ीं आ देखता हूं बेड़ियां ॥

(३२)

जो प्यार करते हैं मुझे संसारमें बहु यत्न कर,
वे फांस लेते हैं सदा सब साधनोंसे बाँधकर ।
है प्रेम तेरा पर निराला सर्व सुन्दर श्रेष्ठतम,
जो कैद करता है नहीं हर वक्त रखता मुक्ततम ।
पीछे पडे रहते सभी हैं छोड़ते छिनभर नहीं,
यों सोचते हैं मैं भुलादूं भूलकर उनको कहीं !
देता दिखाई तू न है जाते कई दिन बीत हैं,
तू है रँगा मम प्रेममें तव प्रीतिकी यह रीत है ।
तुझको बुलावा दूं न दूं वो ही करूं जो हो खुशी,
मेरी खुशीके साम्हने तू है नचाता निज खुशी ॥

(३३)

वे आये दिनमें मेरे घर, कहने लगे वचन यों तुलकरः—
"एक ओर हम पडे रहेंगे, प्रभु-पूजामें मदद करेंगे,
मिल जावेगा जो परसाद, ले-लेगें पूजाके बाद । "
यों कह दीनहीन-से बनकर, बैठे एक ओर सकुचा कर,
रात देख फिर हुए प्रबलतर, पैठे मेरे मन्दिरभीतर,
मैले अशुचि करोंमें लेकर, लगे उड़ाने देवभोग वर ॥

(३४)

सर्वस्व मानूं मैं तुझे ममता रहे बाकी यही ।
पाऊं तुझको दिशादिशामें, मिल जाऊं सब तजकर तुझमें,

रहूं प्रेमरत तव निसदिन मैं, इच्छा रहे बाकी यही,
तुझे छुपाऊं कभी नहीं मैं, मान मेरा हो यही। सर्व०
तव लीला हो इन प्राणोंमें, इन्हें लिये हूं इसीलिये मैं,
बँधें एक तव बाहु डोरमें, बन्धन रहे बाकी यही। सर्व० ॥

(३५)

हो चित्तमें निर्भयता जहांपै, ऊंचा जहांपै जनसीस होवे,
स्वतंत्र हो ज्ञान सदा जहां पै, होवे जराभी उसमें न बाधा।
घरू दिवारें वन तुच्छ-छोटी, करें जहां खण्ड न ऊर्वराके,
बातें जहां अन्तरकी, अनोखी, गंभीर, सच्ची, प्रकटे सदा ही।
होवें जहां पौरुष-स्रोत, भारी वहे जहांसे शुचि कर्म-धारा,
दिशादिशामें बहती हुई सो, सदैव अच्छे फलदे हजारों।
कुरीतियोंकी मरु बालुराशि, विचार-स्रोतःपथको न ढाकें,
नेता जहां तू सब काम का, त्यों, विचार-आमोद-प्रमोदका हो।
हे तात! आघात स्वयं करोंके, लगा लगा निर्दय हो लगाके,
स्वतन्त्रताके उस स्वर्गमें तू मेरे प्रभो भारतको बिठादे ॥

(३६)

है प्रार्थना तुझसे यही मुझको प्रभो बल-वीर्य दे,
उड़जाय निर्बलता सकल हियसे मुझे वह वीर्य दे।
आनन्दसे सुखमें रहूं आनन्दसे दुख मैं सहूं,
सुखदुःखमें इकसा रहूं मेरे प्रभो वह वीर्य दे।
निष्काम हो संसारकी सेवा करूं सेवा करूं,
यों प्रेम मेरा हो सुफल स्वामिन् मुझे बलवीर्य दे।

मैं दीनहीन दारिद्रको मानूं कभी नहिं तुच्छसे,
उनकी उपेक्षा नहिं करूं ऐसा हरे बलवीर्य दे ।
जो गर्वसे उद्धत बने सत्ताधिकारी मदसने,
उनको झुकाऊं मैं न शिर मुझको वही बलवीर्य दे ।
जो नित्यकी बातें विभो हैं सर्वसाधारण सुलभ,
उनसे रहे मेरा हृदय ऊंचा, प्रभो बलवीर्य दे ।
तेरे चरणपर शिर धरे निशिदिन हरे मैं स्थिर रहूं,
तव प्रेमके पथ पर चलूं ऐसा मुझे बलवीर्य दे ॥

(३७)

मैं सोचता था शक्ति मेरी होगई निःशेष है,
त्यों मार्ग पूरा होगया यात्रा नहीं अवशेष है;
पाथेय सारा चुकगया, है काम ना, एकान्तमें–
बैठा रहूंगा अब निरन्तर सर्वथा हो शान्त मैं ।
किन्तु मैं यह देखता हूं चाहता तू यह नहीं,
मैं शान्त हो बैठा रहूं इच्छा तेरी है यह नहीं ।
जब शब्द पाते अन्त हैं प्राचीन मेरे मुखधरे,
तब शब्द नवनव तू उठाता है मेरे हियसे हरे ।
ज्यों छूटजाता है पुराना देश मुझसे हे प्रभो
त्यों देश दिखलाता नया अचरजभरा उत्तम प्रभो ॥

(३८)

चाहूं तुझको, तुझको चाहूं, तुझको तुझको चाहूं नाह,
प्यारे तेरी चाह मुझे है, केवल–केवल तेरी चाह,

कितनी हियमें चाह भरी है नहीं नहीं जिसकी कुछ थाह,
चाहूं तुझको तुझको चाहूं०
मुझको व्याकुल करदेती है विविध वासना बन अनुकूल,
हैं निःसार महा मिथ्या हैं हैं वे सभी दुःखकी मूल,
जैसे रात छुपाये रहती अन्धकारमें तेज अथाह,
मोहावस्थामें भी मेरा मन कह उठता है वाहः—चाहूं तुझको०
जैसे आंधी विश्वशान्तिको खंड बंड करदेती है,
अन्त समय फिर उसी शान्तिको जगभीतर भरदेती है,
वैसे ही मेरा द्रोहीपन तवस्नेहकी करता चाह,
फिर उसके ही लिये विकल हो यों पुकार उठता है आहः—
तुझको चाहूं० ॥

(३९)

हो जाय जीवन शुष्क तो करुणा-जलधि हो नाथ आ,
जो लुप्त हो हिय माधुरी सङ्गीतरस ले साथ आ ।
जब कर्म जगके हों प्रबल चहुं ओर मम हल्ला करें,
मेरे हृदयमें शान्त पद रख शान्तिके हे नाथ आ ।
जब चित्त मेरा हो कृपण एकान्तकाले आसरा,
तब खोल दरवाजे प्रभो सम्राटका कर ठाठ आ ।
जब धूल झोंके आँखमें, देवे भुलावे वासना,
तब आँख मेरी खोल बनकर पास दिव्य प्रकाश आ ॥

(४०)

सूखा पड़ा है हियबीच मेरे, होती न वर्षा चिरकालसे है,
दिक्चक्रमें व्यापक नग्नता है, न अभ्रका है परदा कहीं भी,

आसारभी सीकरके नहीं है, कैसे रहे शीतलता सुहानी;
हे देव ! इच्छा यदि होय तेरी, तूफानवाली बस भेज आँधी,
सारा नभोमंडल कालिमासे छादे घटाकी, मत छोड़ बाकी,
सौदामिनीके चमकारसे भी–होने चकाचौंध भयावनी दे,
होने भले दे बहु गर्जनाभी, परन्तु चुप्पी अपनी हटा ले।
नैराश्यसे होकर तीव्र, मेरा हियाजलाये यह ताप देता;
निःशब्दतासे तव जो हुआ है, इसे हटाले रख मौन ना तू।
गुस्से पिता हो तब साश्रु माता, सन्तानकी ओर निहारती है,
बर्से उसी भाँति दया स्वरूपी मेघावली ऊपर इन्द्र, मेरे॥

(४१)

कहां खड़ा है सबके पीछे छुपा छांहमें तू निजको,
मार्ग धूलिमें दबा तुझे जन नहीं समझते कुछ तुझको।
ए मेरे प्रियतम ! वे तेरे अति समीपसे जाते हैं,
तोभी ध्यान न देते मेरे हियमें दुख उपजाते हैं।
साज सजाकर सब पूजाका मार्ग-प्रतीक्षा करती हूं,
तेरे आनेकी आशामें घंटोंसे मैं बैठी हूं।
आते हुए पथिक फूलोंको एक एक कर ले-जाते,
फूलोंभरी छाब मेरी यों खाली हाय किये जाते।
बीत गया है प्रात, दुपहरी रही नहीं, सन्ध्या आई,
आने लगी आँखमें निद्रा अंधेरी चहुंदिस छाई।
अपने घर जानेवाले जन मुझे देख मुसकाते हैं,
पूछ-पूछ कर प्रश्न अनोखे मुझको प्राण ! लजाते हैं,

मुखपर अंचल डाल भिखारिन लड़की सी मैं बैठी हूं,
मुझे पूछते क्या चाहे जन तब उत्तर नहिं देती हूं ।
लाजभरी मैं प्रियतम अपने दृग नीचे कर लेती हूं,
हियपर जैसी बीते वैसी चुपकेसे सह लेती हूं,
उनसे कैसे कहूं हाय मैं मार्ग देखती हूं पियका,
कैसे कहूं हुआ है वादा आनेको हृदयेश्वरका ।
यह दारिद्र्य-भेंट रक्खी है पियके लिये, कहूं कैसे !
भलीभांति दबगई लाजसे मौन नहीं होऊं कैसे !
छुपा रखा है मैंने अपनी हृदयगुहामें यह अभिमानः—
तू मेरी आँखोंका तारा तू मेरे प्राणोंका प्रान ।
नभकीओर घासपर बैठी आसभरे दृगसे देखूं,—
अकस्मात तेरे आने के वैभवके सपने लेखूं ।
झलमल करती हैं महताबें ध्वजा पताका फहराती,
रत्नजड़े सोनेके रथपर रम्य सवारी तब आती ।
फटे पुराने कपड़ोंवाली कंगालिनको कर मृदुहास,
रथसे उतर उठा धूलेसे बिठलाता तू अपने पास ।
यह गरीबिनी लाज-मानसे वहां काँपती है थरथर,
मानो ग्रीष्म-पवन लगनेसे लता काँपती हो थरथर ।
लोग मार्गमें दृश्य देख यह मौन खड़े रह जाते हैं
लगा टकटकी दांतों-उँगली दे हिय अचरज पाते हैं ।
समय बीतता ही जाता है तेरी कुछ खबर न आई,
तब रथके पहियोंकी तक नहिं कोई आहट सुनपाई ।

सज धज बड़े जुलूस सैंकडों अपना रंग दिखाते हैं,
धूमधाम औ चमकदमकके साथ निकलते जाते हैं ।
सबके पीछे छाया नीचे खड़ा रहेगा क्या तूही,
साधे मौन विना कुछ बोले अड़ा रहेगा क्या तूही,
अहो प्रतीक्षा करती तेरी मैं ही प्राण ! रहूँगी क्या ?
व्यर्थ कामनाके वश रो रो मैं ही पिय ! जिय दूंगीं क्या ?

(४२)

बडीभोर यह तै पायाथा बैठ नावके भीतर हम,
केवल तू औ मैं, बस दोनों चले चलेंगे ए प्रियतम ।
नहीं किसीको जान पड़ेगी इस यात्राकी जगमें बात,
जो पूरीहो कौन समयपर, कौन समयमें, है अज्ञात ।
उस असीम सागरमें तेरी शान्त-श्रुति हो, हो मृदुहास,
उसी समय मेरे गानोंका होवेगा अति मधुर विलास ।
शब्दोंके बन्धनसे होंगे वे गाने सब भांति स्वतन्त्र,
मानो मधुरवीचियाँ सोहें या ध्वनिमय अनहदके मन्त्र ।
क्या अबतक वह समय न आया क्या अबभी है बाकी काम,
तट पर छाने लगा अँधेरा होती आती है यह शाम ।
देखो सामुद्रिक पंछी ये उड़उड़कर जा रहे तमाम,
सन्ध्याके झुटपुटे समयमें पहुंच सकेंगे अपने धाम ।
जाने कौन कौनसे छिनमें जंजीरें सारी खुल जाँय
सूर्य-अस्तकी अन्तिम झिलमिल-सम निशिमें कब नौ लय पाँय ।

(४३)

एक दिन वह था कि मैं तेरे लिये सज्जित न था,
हे नाथ मेरी ओरसे तुझको बुलाया भी न था।
तू सर्व साधारणके सदृश तो भी प्रभो था आ गया,
मेरे बिना जाने हृदयमें स्थान मेरे पागया।
चपल जीवन के क्षणों पर और मेरे हे प्रभो!–
मुद्रा लगा दी स्थैर्य की तूने दयासिन्धो विभो।

× × ×

जब आज एकाएक मेरी दृष्टि पड़ती है वहाँ,
तेरे मुझे हैं देख पडते और हस्ताक्षर वहाँ,
तब है पता लगता मुझे वे क्षण पड़े हैं भूलमें,
विस्मृत दिनोंकी शोक-मुद-घटना-स्मरणकी धूलमें।

× × ×

देख मुझको खेलता है खेल बचपन के प्रभो!
तूने न फेरा मुँह कभी मुझसे घृणा करके विभो!
मैंने सुनी थी तब पदोंकी ध्वनि क्रोडाऽऽवासमें,
आज उनकी ही प्रतिध्वनि गूँजती आकाशमें॥

(४४)

जिस ठौर होती है अनन्तर छाँह नाथ! प्रकाश के,
जिस ठौर उष्माके अनन्तर आँय दिन बरसात के,
उस ठौर मारग के किनारे बैठना तव राह में,
आनन्द मेरा है बिताना समय तेरी चाह मैं।

दूतगण सानन्द ला अज्ञात लोकों से खबर,
मुझको बधाई दे चले जाते तुरत निज पंथ पर।
बस चित्तके-ही-चित्तमें होता मुझे अति मोद है,
शीतल सुगन्धित मन्द वह देती पवन आमोद है,
मैं ठीक प्रातः कालसे सन्ध्या समय तक ध्यान कर,
बैठा रहूँ निज द्वारके सन्मुख दृढ़ासन मार कर।
विश्वास है यह दृढ मुझे, निश्चय मुझे है सर्वथा,
होगा अचानक सुख समय, दर्शन मिलेगा नाथका,
इस बीचमें मै एकला करता मधुर मुसकान हूं,
और करता सप्त-स्वर-पूरित मनोहर गान हूँ।
आनन्द की लहरें, बढा आशा दिलातीं प्रण भरी,
इस ही समय आती मधुर मारुत महा सौरभ-सनी॥

(४९)

क्या दी सुनाई उसके पदोंकी, अत्यन्त शान्त-ध्वनि आपको ना?
वो आ-रहा है वह आ रहा है, वो आ रहा है नित आ रहा है।
क्या रातमें क्या दिन में सदा ही, घड़ी-घड़ीमें पलमें छिनोंमें;
वो आ रहा है वह आ रहा है, वो आ रहा है नित आ रहा है।
मैंने हिये की बहु हालतोंमें संगीत गाये बहु भाँतिके हैं,
सारे स्वरोंमें उनके परन्तु, पिटा ढिंढोरा इस भाँतिका है:-
वो आरहा है वह आरहा है, वो आरहा है वह आरहा है।
वसन्तके सुन्दर वासरोंमें, शोभा सने जंगल मार्गमें हो,
वो आ रहा है वह आ रहा है, वो आ रहा है वह आ रहा है

बर्सात की श्यामल रात्रियोंमें, सघोष मेघावलिका रथी हो,
वो आ रहा है वह आ रहा है, वो आ रहा है नित आरहा है।
ये हैं उसी के पद जो दबाते, मेरे हिये को दुखशोकमें हैं,
हैं स्पर्श भी ये उसके पदोंके, आनन्द मेरा चमका रहे जो ॥

(४६)

कितने काल से पास आरहा है निरन्तर ।
मुझसे मिलने को तू जानता हूँ न मैं जरा ॥
दिवानाथ निशानाथ त्यों तारे मुझसे कभी–
सवर्दाके लिये तेरे, न छुपा सकते तुझे ।
अनेकों प्रान्तमें त्योंही अनेकों साँझमें प्रभो,
तेरे चरण की दी है सुनाई मधुर ध्वनि ।
अन्तःकरण में मेरे आये हैं तव दूत भी,
एकान्त-स्थलमें और मुझे वे हैं बुलागये ।
नजाने कर्मयोगी क्यों जीवनी मम आज है ।
वार वार महानन्द उमड़े चल चित्तसे ॥
अब तो हे घनश्याम है जान पड़ता यहीः–
काम मैं कर दूँ बन्द आ गया वह काल है ॥
शुभागमन की तेरे रम्य सौरभ छा रही ।
उसकी मुझको होती वायुमें अनुभूति है ॥

(४७)

करते हुए प्रतीक्षा उसकी बीत गई प्रायःसब रात,
आँखोमें छा गई घुमेरी शिथिल हो गये सारे गात ।

कहीं अचानक प्रात समय वह मेरे द्वार न आजावे,
मुझे कदाचित हो न खबर भी भय है निद्रा छा जावे।
मित्रो उसके लिये निलयका मेरे द्वार खुला रखना ॥
आने देना रोक टोक बिन उसे मनाई मत करना।
जगा न पावे मुझको आहट जो उसके पद रखनेकी,
तो कोशिश करना, न विनय है मुझे जागरित करनेकी।
प्रातःश्रीके शुभ अवसरमें मैं न चाहता उठजाना
कलरव क्यों न विहंग करें? क्यों चले समीर न ? मस्ताना ॥
जो प्रभु एकाएक द्वार पर आ जावे मेरे मित्रो,
मुझे शान्तिसे सोने देना तो भी तुम प्रियवर मित्रो
निदिया प्यारी निदिया मेरी उसी समय दूरी होगी:—
जब उसके अनमोल मनोहर छूने की बारी होगी।
मेरी आँखे पलक उठाकर उसी समय खुल जावेंगी:—
जब उसके उस मन्द-स्मितकी वे ज्योत्स्ना लख पावेंगी।
जब वह आके मेरे सन्मुख स्वप्न समान खड़ा होगा,
अद्भुत समाँ बँधेगा उस छिन अद्भुत दृश्य खड़ा होगा।
सारे जगके सब तेजोंसे सकल मूर्तियों से पहले,
आने दो उसको ही मेरी आँखोके पथमें पहले।
जगते ही आत्मामें पहले होने दो यह मुद संचार:—
नेह भरी रँग भीनी उसकी दृष्टि पड़ी मुझपर सुकुमार।
मुझको यह आज्ञा दो मित्रो इसमें चूक न हो जावे
मेरी साध न रहे अधूरी काम बिगड़ने नहिं पावे।

ज्यों ही निज सरूप का मुझको भान भली विध होजावेः—
मेरी आतम उस पीतमकी सुन्दरतामें मिल जावे ॥

(४८)

प्रभात का शान्ति समुद्र फूटा, विहङ्ग के गीत-तरङ्ग द्वारा ।
दोंनो किनारे पथ के खिले थे, सुगन्ध वाले रमणीय पुष्प ॥
सुवर्णकी श्री धर बादलोंकी, दरारसे आ किरणें रही थीं ।
जहाँ तहाँ वे बिखरी हुइ थीं अनन्त सौन्दर्य लुटा रही थीं ॥
इसपै लगाया हमने न ध्यान, स्वमार्ग पै ही चलते गये थे ।
आनन्द सङ्गीत न नेक गाये, खेले नहीं खेल कहीं अनोखे ॥
गये न सौदा करने पुरी में, न एक भी शब्द कहा हँसे ना ।
न मार्ग में ही ठहरे कहीं भी, विलम्ब होने न दिया जरा भी ॥
होने लगा काल व्यतीत ज्यों ज्यों, त्यों त्यों उठाते अपने पदोंको ।
सुशीघ्रतासे अति शीघ्रतासे, जाने लगे बेहद शीघ्रतासे ॥
आकाशके मध्य दिनेश आया, जा छाँहमें वे खग कूजते थे ।
मध्यान्ह—तप्तानलकी तपाई, पत्ती लगा चक्कर नाचती थी ॥
पडा हुआ था वट-छाँह नीचे, गोपाल का बाल अचेत हो के ।
तृणावली पै झिरके समीप, मैं भी गिरा जा गह देह थाकी ॥
भारी तिरस्कार भरी हँसी से, साथी हँसे थे मम ओर मेरे ।
ऊँचा किये मस्तक गर्वसे वे, चले गये थे फिर के न देखा ॥
न की 'जय श्री' हरि भी उन्होंने, थोड़े क्षणों में दृग मार्ग से भी—
हो दूर जा श्यामल छाँय बीच, ऐसे छुपे, जो लख भी पड़े ना ॥
अनेक मैदान, अनेक शैल, बड़े बड़े दुर्गम देश नाना,

किये उन्होंने सब पार नीके, थके न लक्ष्य—च्युत भी हुए ना।।
प्रिय प्रवासीगण धन्य धन्य! बहादुरो हो सब धन्य धन्य।
हो धन्य धन्य प्रिय धन्य धन्य! तुम्हें सदा हो यह धन्य धन्य।।
किया बडा आग्रह था तुम्हारी निन्दा तिरस्कार भरी हँसीने।
हो साथ लेता उठ मैं तुरन्त, परन्तु, मेरे मनने न माना।।
अत्यन्तही सूक्ष्म प्रमोदवाली, वृक्षावलीकी उस छाँय नीचे।
मैंने स्वयं ही निज को गिराया, सानन्द सन्मान-विहीनतामें।।
हैं सूर्यकी रश्मि सुवर्ण रंगी, वो सोहती है तरु-पल्लवों पै।
छाया हरी है तरु-पल्लवों की, मैंने हिया हार दिया इसीमें।।
प्रारम्भ मैंने किस काम की थी, यात्रा सभी ये सहसा भुलाया,
मनोज्ञ छाया मृदुगान में त्यों, मैं हो गया चेतनता-विहीन।।
निद्रा हुई भङ्ग अखीर में औ, आँखे खुलीं तो तुझको विलोका।
खड़ा हुआ पास तथा न्हिलाता, मेरी घुमेरी स्मित-चन्द्रिकासे।।
दूरी कहाँ वो तव मार्ग की जो छक्के छुडादे बहु साहसीके,
त्यों, भी कहाँ वो कठिनाइयोंकी, पहूँचने में तब पास जो थीं!
परन्तु प्राणेश्वर! प्राण! प्यारे! सौगम्य कैसा यह जो दिखाया,
सौलभ्य कैसा यह और नाथ किसी तरा भी कहते बने ना!

(४९)

तू निज ऊँचे सिंहासन से नीचे नाथ उतर आया;
मेरे सूने घरके द्वारे खडा हो गया हुलसाया।
बैठा हुआ अकेला कुछ-कुछ मन-ही-मन मैं गाता था,
तेरी श्रुति में पहुँचा वह स्वर नीचे नाथ, उतर आया;
मेरे सूने घरके द्वारे खड़ा हो गया हुलसाया।

तेरी सभा-बीच; होते हैं—बहुत गान, हैं बहुर गुणी,
किंतु, आज निर्गुण गानेने तेरे प्रेमको उमड़ाया।
सकल विश्वकी सब तानोंमें करुणा भरा लगा स्वर एक,
करले सुमन-माल देनेको उतर नाथ नीचे आया,
मेरे निर्जन गृह—द्वार पर खड़ा हो गया हुलसाया ।।

(९०)

स्वल्प गाँव की गली गली में भीख माँगता फिरता था,
उसी समय निज कांचन रथ पर चढ़कर नाथ चला तू था।
एक अपूर्व स्वप्न-सम मेरी इन आँखो में समा गया,
वहाँ हृदय हारी अति सुन्दर परम रम्य वह दृश्य नया।
क्या अद्भुत वह शोभा तेरी क्या विचित्र दीखा वह साज,
मैंने मन-ही-मन सोचाथा आते हैं कोई महाराज।
भाव उठा था मन में बीती रात शुभ-क्षण में है आज,
द्वार द्वार पर भीख माँगते फिरना बन्द होयगा आज।
रथ आता है, खूब लुटाया जावेगा धन धान्य अपार,
झोली भर भर ले जाऊंगा धनके खूब भार-के-भार।
देखा तो सहसा तेरा रथ आ ठहरा वह मेरे पास,
मेरे मुखकी और देखता उतरा तू भी कर मृदुहास।
तव मुख की छवि मोदमयी लख मेरे दुःख हुए थे दूर,
भाग्योदय होना जाना था चहरे पर आया था नूर।
इसी समय किस लिये न जाने तूने अकस्मात ही नाथ,
इमको कुछ दो कह फैलाया मेरे सन्मुख दक्षिण हाथ।

हम को कुछ दो कैसी अद्भुत राजेश्वर की है यह बात,
सुन कर छिन भर शिर नीचा कर शिथिल हो गया मेरा गात ।
तू है महाराज राजेश्वर तेरे भला कमी क्या है ?
भिखमंगोसे भीख माँगता अनहोनी कैसी क्या है ?
या केवल कौतुक करने को धौंका जाता मुझे दिया ?
एकअल्प-कण तब झोलीसे मैंने तुझे निकाल दिया ।
घरमें झोली मैंने अपनी खाली की जब घर आया,
भिक्षामें तब एक अल्प कण दिव्य कनकका लख पाया ।
राज-भिखारीको भिक्षामें दिया अल्प-कण था मैंने,
वही अल्प-कण कांचन-कण बन फिर-आया पाया मैंने ।
तबतो फूट फूट मैं रोया दोंनो दृग भर भर लाया,
दिया क्यों न तुझको निज सरबस बार बार मैं पछताया ॥

(६१)

हुआ अँधेरा रात का पूर्ण हुए सब काज,
हमने सोचा आयगा कोई नहिं अब आज ।
द्वार हमारे गाँवके बन्द किये निशि जान,
बोले तब दो-एक जन आवेंगे महमान ।
हम बोले हँस आयगा कोइ नहिं अब आज,
हुआ अँधेरा रात का पूर्ण हुए सब काज ।
द्वारे पर धक्का लगा हमें पड़ा यों जान:—
सन सन सन सन चल रहा होवेगा पवमान ।

हम घर के दीपक बुझा सोये आलस आन,
बोले तब दो-एक जन आये दूत सुजान,
हमने हँस कर था कहा होवेगा पवमान ।
आधी निशिमें सुन पड़ा सोते में कुछ नाद,
सोचा घोर घुमेर में होता है घन नाद,
थर थर भू कँपने लगी पाई नींद विषाद,
बोले थे दो एक जन है रथ चक्र निनाद,
कहा उनीदेमें यही हमने है घननाद,
रैन अँधेरी थी तभी बाजे बजे हजार,
जगो सभी देर न करो होने लगी पुकार,
वक्ष चाप दो हाथसें समय उठे हम हार,
तन थर थर होने लगा पडा शीस पर भार,
बोले थे दो-एक जन है नृप धजा दयाल,
हमने जग उठ तब कहा रहा न अब कुछ काल ।
कहाँ दीप ? माला कहाँ ? कहाँ अर्घ्य सामान ?
राजा आये हैं कहाँ सिंहासन ? सुस्थान ?
कहाँ सभा ? श्री है कहाँ ? हाय दैव ! हा लाज !
बोले तब दो-एक जन व्यर्थ रुदन है आज ।
सूने घर खाली करों कर स्वागत के साज,
बिन दीपक बिन पाँवडे आते हैं महाराज,
दरवाजे सब खोलदे बजा शंख भरपूर,
भूप अँधेरे निलय का आया नहिं है दूर,

घन गरजे आकाश में चमके बिजली क्रूर
फटे पुराने बिस्तरे बिछा आँगने पूर
दुखनिशिका नृप साथ झड ले आया सब दूर

(९२)

सुहा रही थी तब साँझको जो, माला गले में वह माँग लूँगी,
यों सोचती थी निज-चित्तमें मैं, माँगी नहीं साहस धार किन्तु,
मैं सोचती थी जब भोर होगा, तू जायगा दूर चला कहीं भी,
पडी रहेगी तब पुष्प-माला, पलङ्ग के पास वहीं कहीं पै,
इसी लिये मैं करती प्रतीक्षा, भिखारिनी–सी अति भोर आई,
माँगी नहीं साहस धार तो भी, माँगी नहीं साहसधार तो भी,
माला नहीं है यह तो तुह्मारी, है वज्रसे भी कठिना कटारी,
ज्वालामयी अग्नि समान भारी, जले कटारी यह तो तुह्मारी,
प्रभात आभा तव सेज पै वो, पडी सुवातायन मार्ग से आ,
प्रभात में गा खग पूछते थे, पाया बता क्या ललिताङ्गि ! तूने ?
माला न पाई, न गुलाबदानी, पाया नहीं सौरभ-द्रव्य कोई,
मिष्टान्न मेवा कुछ भी न पाया, पाई तुह्मारी कठिना कटारी,
मैं बैठके ही इस हेतु सोचूँ, क्या है तुह्मारा यह प्रीति-दान,
रक्खूँ कहाँ मैं इसको छुपाके, ऐसी मुझे तो मिलती जगा न,
लाजों मरूँ मैं अबला बिचारी, शोभा मुझे दे यह साज कैसा,
रक्खूँ इसे जो हिय बीच मेरे, पाते व्यथा हैं मम हाय प्राण,
तो भी धरूँगी अपने हियेमें, इसे छुपाके अति प्रेमसे मैं,
है वेदनाका यह पूर्ण मान, इसे रखूँगी तव मान दान।

संसार में जो भय हैं उन्हें तो, मैं आजसे ही पिय छोड दूँगी,
मेरे सभी कारज में सदा ही, होगा तुम्हारा जय आज से ही।
मेरे सभी बन्धन काट देगी, प्रभो तुम्हारी कठिना कटारी,
मैं छोड दूँगी भय आज से ही, मैं छोडती हूँ भय आजसे ही ।
नहीं तुम्हारे हित मैं सजूँगी, न वेश–भूषा अब मैं करूँगी,
प्राणेश आओ फिर आप चाहे, शृंङ्गार सोल्हे फिर ना धरूँगी ।
मैं बैठ सूने घरमें जमीं पै, रोनी नहीं हूं स्मृति में तुम्हारी,
मकान में बाहर या कभी मैं, लज्जा करूंगी न प्रभो तुम्हारी ।
मुझे सजाया तव शस्त्रने है, न साज दूजा अब मैं सजूंगी,
न वेश–भूषा अब मैं करूंगी, शृङ्गार सोल्हे फिर ना धरूंगी ॥

(९३)

भांति भांति की रंग बिरंगी रत्न–राजिसे जडा हुआ,
तेरा कर कङ्कण है सुन्दर ताराओंसे बना हुआ ।
है परन्तु उससे भी सुन्दर तेरी यह बाँकी तलवार,
फूली हुई साँझमें मानों गरुडपाँखका हुआ प्रसार ।
जब आघात काल का अन्तिम अन्त समयमें लगता है,
महावेदना सहकर कँपता स्वास निकल कर भगता है ।
वैसी ही कँपने वाली है तेरी यह तीखी तलवार,
पार्थिव भाव भुलाने वाली आत्माकी-सी चमके धार ।
तेरा कर-कङ्कण है सुन्दर ताराओंसे बना हुआ,
भाँतिभाँतिकी रंग बिरंगी रत्न राजिसे जडा हुआ ।
वज्रपाणि ! पर उससे भी है सुन्दर तेरा यह हथियार,
जिसका ध्यान किये भी होता हृदय-बीच अतिभय संचार ।

(९४)

तुझसे मैंने कुछ नहिं माँगा नहीं बताया अपना नाम,
तुझने बिदा माँगली तो भी मौन रही मैं हे गुणधाम !
बैठी रही अकेली मैं ही निकट कुएके नीम-तले,
अपने अपने घटको भर कर गया सखी-गण दूर चले ।
मुझे पुकार गया जल्दी चल देख समय यह बीता जाय,
बैठी रही वहीं ना-जानूँ कौन भाव में मैं अलसाय ।
कब तुझ आये पैरोंकी भी आहट तक ना सुन पाई,
करुण दृष्टि—मय क्रान्तकण्ठसे कथा यही कानों आईः—
"प्यास हूँ मैं पथिक" श्रवण कर चौंक उठी थी मैं तत्काल,
तभी तुझारे करमें अपने करसे जलधारा दी डाल ।
पूछा आग्रहसे तब तुझने नाम, मुझे आई तब लाज,
याद न आया, याद करो तुझ ऐसे हैं क्या मेरे काज ।
दे पाई थी तृषा काल में थोड़ासा जल मैं तुझ को,
इस अत्यल्प बात से ज्यादा याद न आया कुछ मुझ को ।
पत्ते काँप रहे थे थर थर कोयल कू-कू करती थी,
ग्राम मार्ग पर वन्य कुसुम तति अपनी सौरभ भरती थी ।
वही कुयेका निकट देश है, वही काल, खग वह बोले,
वही नीम लहरावे वो ही बैठी हूं मैं बिन बोले ।

(९९)

घोर घुमेरी अबतक तेरी गई नहीं क्या ?
आँखें तेरी अबतक नीके खुली नहीं क्या ?

राज चलाता कंटक–वनमें फूल–फूल कर,
आलसवाले जग जग तुझ को खबर नहीं क्या ?
पथरीले पथके आगे वन अगम विजन है,
बैठा वहीं कहीं मम प्रियजन ध्यान नहीं क्या ?
जाग जाग ओ जगते सोते समय चला यह,
धौका मत-दे धौका देना बुरा नहीं क्या ?
हिल जावे नभ प्रखर सूर्य के तप्त करों से,
बरसावे चहुँ आग, करे सब, करे नहीं क्या !
तपी बालुका सभी ओर आँचल फैलावे
तृषा सतावे भले, हिये तव प्रीति नहीं क्या ?
हृदय देख तो वहाँ हर्ष क्या भरा नहीं है ?
पद पद पर दुख–वेणु बजेगी मृदुल नहीं क्या ?
तुझे पुकारेगी न मार्ग में क्या स्वर ले ले ?
" आलस वाले जग जग तुझ को खबर नहीं क्या ?

(९६)

मुझ पर है तेरा आनन्द, मैं हूँ तुझको बहुत पसन्द,
इसी लिये तू हे जगवन्दन! है अवतीर्ण हुआ व्रजनन्दन।
यदि मैं होता नहिं भुवनेश्वर! प्रेम व्यर्थ होता तव ईश्वर,
साथी तूने मुझे बनाया, निज ऐश्वर्य पूर्ण दिलवाया।
मेरे हिय में रसकी भरती, नई नई लीला नित करती।
तेरी इच्छा सहस रूप धर, प्रकट रही मम जीवन भीतर।
मुझ पर तेरा है आनन्द, मैं हूँ तुझको बहुत पसन्द।

इसी लिये राजन्-रति-राजा ! वेश मनोहर तूने साजा,
हृदय हरे लेता है मेरा, अनुपम रूप बना यह तेरा ।
मुझमे में तेरा प्रेम लगा है, तुझपर मेरा प्रेम जमा है ।
तू नीचे आया मम पास, मेरे हिय छाया उल्लास ।
तुझमें मुझमें रहा न अन्तर, दोनों एक हुए रसिकेश्वर !

(९७)

ज्योति, ज्योति, मेरी ज्योति, जग भरी प्यारी ज्योति
नयन-प्रकाशी, हिय धुमारी विकासी ज्योति,
अहा ज्योति नाचे मेरे जीवन के केन्द्र बीच,
मेरी प्रेम वीणाको बजा रही प्यारी ज्योति,
जगा रही आसमान चला रही वायु चक्र
हँसा रही सारी धरा प्रियतम प्यारी ज्योति,
फैलाकर पाँखें निज रम्य ज्योति सागरमें
तितलियाँ सुहा रहीं भा-रही है प्यारी ज्योति,
ज्योतिकी किरनें पडें बादलों पै, स्वर्णकी–सी,
नभ में बिखेरती है नाना रम्य रत्न ज्योति,
आनन्द की बाढ–पर–बाढ चढ देव नदी
तट छोड बही जाती दिखलाती छटा ज्योति,
जाई जुई मालती त्यों कुसुम लतायें लौनी
लेती है हिंचोले नीके उठाती तरंगे ज्योति,
प्रमुद अपरिमित पत्ती–पत्ती दिखा रही
मेरी प्रिय, मेरी प्रिय, छा रही है मेरी ज्योति !

(९८)

सब सुर मेरे शेष गान में उस आनँद के छा जावें:—
जिस के कारण इस भूतल पर लता पता छबि दिखलावें,
जन्म-मृत्यु जुगले-से जगमें जिसके वश हो नृत्य करें,
जो तूफान मचाते आवें अट्टहास कर फिरें-हरें ।
करकरके कम्पित जीवन को पूर्ण जागरित जो करता,
दुख के खिले लाल कमलों पर साश्रु शान्ति से पद धरता,
जो सर्वस्व मिला मिट्टी में मुहँ से कहा नहीं जावे,
एकएक स्वर उस आनँद का मम गानों में मिल जावें,
सब सुर मेरे शेष गान में उस अनँद के छा जावें:—
जिस के कारण इस पृथ्वी पर लता-वृक्ष, सबः लहरावें ।

(९९)

प्रत्येक पत्ती पर नाचती है, सुवर्ण-सी सुन्दर दिव्य जो श्रीः ।
मैं जानता हूँ कुछ और है ना है प्राण-प्यारे यह प्रेम तेरा ॥
आकाश पै मेघ सुहा रहे हैं, पीयूषके बिन्दु गिरा रहे हैं ।
ठंडी हवा पूर्ण चला रहे हैं, है प्राण—प्यारे यह प्रेम तेरा ॥
प्रभातकी ज्योति अमी-भरी है, मेरे दृगों में उभरा रही है ।
है प्रेमवाणी तव प्राण में आ आनन्द प्यारे ! बतला रही है ॥
तूने दिखाया मुख है हमारी, ये चार आँखें अब होरही हैं ।
हे प्राण! ओ प्रेम! हिये लिये हूँ, सानन्द तेरे चरणाम्बुजोंको ॥

(६०)

इस अनन्त जग जलधि–किनारे मिल खेलेंरे ! बाल,
है आकाश असीम सीस पर स्थिर अचपलता शील।
अविश्रान्त यह नाच रहा है सलिल सुनील सलील ॥
सब खेलें रे ! बाल ! नाच कूद कोलाहल करते
क्या खेलें रे लाल–इस० १

बालूके घर बना रहे हैं रहे घोंघ से खेल।
बाँके पत्तोंकी नावें कर रहे सलिलमें ठेल ॥
हँसे खेलें रे लाल, नहीं जानते हैं वे तिरना
फैलाना त्यों जाल–इस० २

डुबकी लें मोती-हित डूबे वणिक नाव ले धाय
कर एकत्र फेंकते फिर फिर ढेले शिशु पुलकाय
चाहें ना रतन बाल, नहीं जानते हैं वे कुछभी
फैलाना हाँ जाल-इस० ३

फेनिल निधि हँसता, मुद पाती निधि-वेला रच तान।
शिशुको लोरी सुना झुलाती माता-सी कर गान ॥
मन भाई रे चाल। सागर शिशुओं के सँग खेले
हँसे बेलारे लाल-इस० ४

चलती असीम नभ पर झंझा जाती नौ जल डूब।
मृत्युदूत उड़ते चलते हैं
बच्चे खेलें खूब ॥

हँस नाचेरे बाल।
सागर शिशुओंके सँग खेले
हँसे वेलारे लाल—इ० ५

(६१)

सकल-ताप विनसावन निदियां बच्चोंकी अखियाँओं पर,
आतीजाती कहो कहाँ से कौन जानता नारी नर।
मैंने तो यह सुन रक्खा है परम मनोहर एक नगर,
हरे सघन उसके काननमें रूप सुन्दरी का है घर।
जग महकातीं सौरभ छातीं वहां सुहातीं जो कलियाँ,
महा मोहिनी मन्तर-की-सी रहती वहीं कहीं निदियां।
बच्चों के नयनोंका चुम्बन करनेको वह आती है,
अपने अद्भुत अनुपम सुन्दर करतब सब दिखलाती है।
सोते शिशुओंके अधरोंपर जो मन्द-स्मित भाता है,
है मालूम किसीको कुछ ? वह चला कहाँसे आता है।
हाँ मैं ने यों सुन रक्खा है:—"शारद बाल-सुधानिधिकी
किरण मिली जा शुचि हिम घनमें आई उषा शिशिरऋतुकी
स्वप्न देखती, उसी स्वप्नमें है उत्पत्ति प्रिय स्मितकी,
उस स्मितकी जो बढ़ा रहा श्रीः सोते शिशुओंके मुखकी।
छोटे-से शिशुके अवयवपर मधुर स्निग्ध अभिनव सुंदर,
परम रम्य जो कान्ति मनोहर आती है यह स्वच्छ नज़र,
इतने दिन तक छुपी हुई थी किधर ? ज्ञात है भी प्रियवर !
हाँ है तो विज्ञात भली विध कान लगा कर सुनिये पर।

जब शिशुकी जननी मुग्धा थी उसका हृदय भराथा तब,
मधुर स्निग्ध अभिनव सुन्दर शुचि प्रेम छटासे सब-का-सब,
छोटे-से शिशु के अवयव पर मधुर, स्निग्ध, अभिनव, सुंदर,
वही रम्य है कान्ति मनोहर आती जो यह स्वच्छ नज़र।

(६२)

मेरे लाल लाड़ले जब मैं रंग-बिरंगे लाती हूँ-
तेरे लिये खिलोने, तब मैं यह रहस्य पा जाती हूँ:-
विविध रंग ये आसमान में बादल पर क्यों भाते हैं,
जल में छाँह दिखाते क्यों हैं, क्यों कुसुमों पर छाते हैं।
मेरे लाल गान करती हूँ तेरे नृत्यको मैं जब जब,
सच कहती हूँ इस रहस्य का मुझे भान होता तब तबः-
पत्ती-पत्ती नाच नाचती मधुर-मधुर क्यों गाती है,
सागर मौज महीजनको क्यों अनुपम गान सुनाती है।
लल्लू! लोलुप करमें तेरे मक्खन-मिश्री रखती हूँ-
और तुझे कर-मुख साने मैं घर में फिरते लखती हूँ,
तभी जान पडता है मुझ को मधुर नदी का है जल क्यों,
रस कस पूरित पृथ्वी क्यों है, कुसुम समधु, रस मय फल क्यों।
मेरे परम लाडले बालक! चुम्बन करती हूँ मैं जब-
तेरे मुसकाते चहरेको, मुझे जान पड़ता है तबः-
आसमान क्यों मेरे मुख पर उषा छटा छिटकाता है,
शीतल मन्द सुगन्ध वायु क्यों हिये अमृत भर जाता है।

६३

अजान था मैं जिनसे उन्होंसे, तूने कराई पहचान मेरी।
किये पड़ोसी बहु दूरकोंको, बना दिये हैं परको स्वभाई॥
जहाँ न मेरा कुछ भी कहीं है, वहीं वहीं जा घरमें बिठाया।
आत्मीय है मानव–लोकका ही, तूने मुझे यों सबको बताया॥
चला पुराना घर छोड़ ज्यों मैं, होगा अहो क्या मन आधि छाई।
"प्राचीन तू सर्व–नवीनमें है, साथी सदाका" नहिं याद आई।
जहाँजहाँ जीवन–मृत्यु होंगे, संसार में सत्य वहीं वहीं है:—
तू जन्म–जन्मान्तरका पिछाना, पिछान देगा सब से कराही।
'जाने तुझे; है नहिं अन्य कोई, शंका नहीं है भय भी नहीं है,
सर्वत्र तू ही जगता सदा है,' मैं देख पाऊँ यह, चाहता हूँ।

(६४)

एक बालिका दीपमालिका ले सरिता तट जाती थी,
देवकुमारी-की-सी अपनी दिव्यज्योति प्रकटाती थी।
मैंने कहा कुमारी मेरे घरमें विजन अँधेरी है,
जो तू वहाँ लगा दे दीपक बलिहारी तो तेरी है।
सुन कर ठहरी मुझ को ताका कहा और मैं आई हूँ,
दीप, दान करने सरिताके जल प्रवाहमें लाई हूँ।
चली गई सरिताके तट पर और दीपगण बहा दिये,
मैं तो बस रह गया देखता व्यर्थ लुटाते प्रभा, दिये।
रजनीमुखके शान्त समयमें मैंने पुनः कहा:—बाले!
तेरे दीपक लगे हुए हैं ये अद्भुत आभा वाले!

मेरे इस सुन सान निलय में छाई बडी अँधेरी है,
जो तू दीपक वहाँ जला दे बलिहारी तो तेरी है ।
सुन कर ठहरी लखा सशङ्कित और कहा मैं आई हूँ
दीप, दान करनेको नभको, अपने सँग मैं लाई हूँ ।
चली गई, फिर आसमान पर अपने दीपक चढा दिये,
मैं तो बस रह गया देखता व्यर्थ लुटाते प्रभा दिये ।
घोर अमा की अर्ध निशामें मैंने यों जा पास कहाः—
बाले किस इच्छा से लाई हृदय देशमें दीप महा,
मेरे सूने घरमें छाई चहुंदिस बडी अँधेरी है,
उसको जो तू करे प्रकाशित बलिहारी तो तेरी है ।
ठहरी कुछ छिन, लगी सोचने, देखा मेरा मुख तममें—
घोर अमाकी अर्द्ध-निशाके और कहा यों बस दममेंः—
“दीप, दिवालीमें रखने को मैं तो अपने लाई हूँ,
जग प्रकाशमें अपने दीपक प्रकटाने को आईहूँ”
कह कर चली गई, शुचि दीपक दीप-पंक्तिमें जमा दिये
मैंतो बस रहगया देखता व्यर्थ लुटाते प्रभा, दिये ॥

(६९)

खूब छला-छल-भरा उभरता मेरा जीवन-पात्र प्रभो,
पिया कौन-सा दिव्य अमृत रस उससे चाहे मम प्रभो ।
रसिक शिरोमणि हे कवि मेरे चाह रहा नवनव रस क्या,
षड्रस-व्यञ्जन-चाट छोड है लखना स्वर-व्यञ्जन रस क्या !

क्या तू चाह रहा है लखना मेरी अँखियाँ में आई:—
तेरे सकल-विश्व की अनुपम सुन्दरता सब मिल छाई ।
मेरे कानोंके परदों में छुपा हुआ क्या तू चुपचाप,
एक तानसे हुए गानको सुनना चाहे अपने आप ।
तेरा जगत हृदयमें मेरे शब्दराशि ला धरता है,
तव आनन्द उसीमें आआ अनुपम ध्वनियां भरता है,
मुझमें प्रेम स्वयं रचता तू और स्वयं अनुभव करता,
अपनी हृदय मधुरताकी ही मम जीवनमें सुन्दरता ।

(६६)

जो आभास—सदृश जीवन में कभी कहीं कुछ झलक गई,
जो प्रभातके प्रभालोकमें हटा न घूँघट प्रकट भई ।
इन गीतों के वस्त्र पिन्हा कर उसे समर्पित करता हूँ,
तेरे चरणोंमें मैं प्यारे चरम भेट यह धरता हूँ ।
वाणी जिस को भलीभाँति से नहीं कहीं अपना पाई,
जो गानोंके सकल स्वरोंमें किसी भाँति ना बँध पाई ।
परम मोहिनी, रम्य, नवीना, निखिल नयनसे छुपी हुई,
जो मम अन्तर में बिहरी, जो हटा न घूंघट प्रकट हुई,
इन गीतों के०

देश देश में घूमा तो भी अन्तरमें ही लुकी लसी,
खाते-पीते, सोते—जगते, चलते—फिरते, छुप विलसी ।
सब सपनोंमें, सब भावोंमें, सब कामोंमें, मम झलकी;
पर प्रभातके प्रभालोकमें हटा न घूँघट जो दमकी ।
इन गीतों के०

कितने-कितने दिनसे कितने लोक चाहते थे उसको,
लौटे बाहर-ही-बाहरसे समझ सके ना कुछ उसको,

तू ही पहचानेगा, होगी तुझसे फिर पहचान नई,
रही इसीसे जो अन्तर में हटा न घूंघट प्रकट हुई.

इन गीतों के०

(६७)

है तू ही आकाश प्राणियोंका घर तू है,
अनुपम पूरन प्रेम घरोंमें भरता तू है ।

उनमें सबके प्राण घेर तू मुग्ध बनाता,
भाँतिभाँतिके राग-रंग सौरभ प्रकटाता ।

दहने करमें हेमथाल ले उषा वहाँ पर—
ले आती माधुर्य-माल अतिरम्य सजा कर ।

और पिन्हाती मोद मना महिरानी-शिर पर
छा देती क्या छटा अनोखी अद्भुत सुन्दर !

पश्चिम-निधि-कर-स्वर्ण झरीमें भरे शान्ति जल,
अविदित मगसे साँझ नवेली आती शीतल ।

पर है जहाँ अपार आत्म-संचार सदा मम
है वह नभ निःसीम, श्यामसुन्दर हे पीतम !

वहाँ नहीं दिन-रात, रूप रँग वहाँ नहीं है,
गन्ध नहीं है वहाँ, नहीं है शब्द, नहीं है ।

(६८)

तेरे रवि कर, कर फैला कर मेरी पृथ्वी पर आते,
क्यों? क्या है? क्या ले जाने को दिन भर दर पर जम जाते?
रैन-अँधेरीमें जब फिरते तब जाने नयनाश्रुजना,
ललित गीत व्याकुल वाणी-मय ले-जाते घन-बसन बना।
नये-नये फिर रूप-रंग दे उस घनको तू चमकाता,
अद्भुत अनुपम उत्तरीय कर तारक-हिय पर रख भाता
है वह चपल मृदुल श्यामल लघु इससे उसको प्यार करे,
निज प्रकाशको ढांक निरञ्जन! सकरुण छायामें विहरे।

(६९)

मेरे इस तन की नस-नसमें नाच कूद जीवन करता,
निसदिन छन्द-ताल-लयमें जो, वही सकल जगमें फिरता।
महितलकी मिट्टीमें मुद-मय पुलक-पुलक पैदा करता,
तृण अंकुर तरुलता पुष्प फल विकसाता शोभा भरता।
विश्व-व्यापी जन्म-मृत्यु-निधि-लहरों में है लहराता,
और अनन्त ज्वार-भाटोंके झूलोंपर झोले खाता।
अब मेरे अवयव-अवयव पर वह अनन्त जीवन छाकर,
महीयान् करता है मुझको जग भरमें रस बरसा कर।
होता आया है विराट जो युग-युगान्तरोंसे स्पन्दन,
आज वही मेरी नाडीमें जीवन करता है नर्तन।

(७०)

तू आनन्द-पूर्ण-छन्दोंका क्या अनुभव नहिं कर सकता ?
या आनन्द-भवँरमें चक्कर ले-ले डूब नहीं सकता ?
आपस में भी बिना विलोके विश्व सत्व सब रुके बिना,
बढे जा रहे बडे वेग से कोई रोक नहीं सकता।
भाँतिभाँतिके दृश्य दिखाती आती जाती है ऋतु ये,
रूप-रंग-स्वर-ताल-भेद की नर कथनी कथ नहिं सकता।

(७१)

अहंकार में लिप्त हुआ मैं अपने को बहु गिनता हूं
और महा-अभिमान-भरा ही इधर उधर बस फिरता हूँ।
तेरी विमल विभा-पर अपनी छाता बहु रंगी छाया,
और नहीं कुछ, और नहीं कुछ, है केवल तेरी माया !
स्वयं सच्चिदानन्द-अंश से विविध विरुत्र रचता है तू,
आविर्भाव-तिरोभावोंकी लीलायें करता है तू।
नाना नाम-रूप दे-दे कर निजको ही प्रकटाता है,
मेरा तन, मेरा मन, जीवनः सब कुछ, तू बन जाता है।
सारे आसमान पर छाते मर्म-स्पर्शी गीत घने,
होते चित्र-विचित्र रँगीले अश्रु-स्मित-भय-आस-सने,
लहरें उठतीं और बैठतीं, सपने आते लय पाते,
ऐसे स्वयं पराजय तेरे मुझमें हैं हो-हो जाते।
ये तूने परदे छिटकाये लाखों है अङ्कित इन पर,
रात दिवसकी निपुण कलमके चित्र सब जगह इधर उधर।

उनके पीछे अति रहस्य-मय वक्र रेखके आसनपर,
अलख भावसे तू बैठा है सरल रेख सब छिटकाकर ।
लगा हुआ है महा--प्रदर्शन जगभरमें तेरा मेरा,
मैं--मैं तू--तू' के स्वरने ही वायु चक्र सारा घेरा ।
होती यही चली आई हैं लीलायें तेरी मेरी,
और न जानें कब तक होंगी बारबार देती फेरी ।

(७२)

है वह मेरा अन्तर्यामी मुझमें जो देता है भर
महाचेतना और वेदना गूढ़, गाढ़ आलिङ्गन कर ।
डाल मोहिनी-मन्त्र नयन पर अद्भुत जादू करता है,
हृदय-बीन को बजा-बजा कर बहु सुख दुख-स्वर रचता है ।
है वह वही जाल माया का रंग-बिरंगा जो रचता,
तन्तु सुनहले और रुपहले नीले हरे सदा भरता ।
इसी जाल से पद बाहर कर अनुपम छवि है दरसाता,
जिसके दरस-परससे मेरा मेरा पन उड उड जाता ।
पल-पल छिन-छिन घडी-घडी कर मास वर्ष बीते जाते,
कितना काल गया है यों ही युग-पर-युग आते जाते ।
नाना नामरूप धर धरके प्रकटाता है सदा वही,
सुख दुखके चक्रोंपर मेरा हृदय घुमाता वही वही ।

(७३)

मेरी मुक्ति न विरक्तिमें है वैराग न मुझसे बनता,
मुझे मुक्ति का आनन्दामृत बन्धन-बन्धन में मिलता ।

रंग-रँगीला और सुगन्धित निजका नयानया मद भर,
खूब लबालब भरा छलकता इस घटको तू देता कर।
तेरे भरे पात्रसे कैसे मैं अपने मुख को मोड़ूँ,
मेरे लिये दिया जो तू ने उससे क्यों नाता तोड़ूँ।
मेरा सकल विश्व रक्खेगा तेरी ज्योतिसे जला जला
भाँतिभाँतिके दीप सैंकडों तव मन्दिर पर, जान भला।
नहीं नहीं, इन्द्रिय द्वारोंको मैं रोकूँगा, कभी नहीं।
दरस—परस कहने—सुननेका मैं हूँ त्यागी ? नहीं नहीं।
शब्द—स्पर्श, रूप—रस, सौरभ, तेरा तेज दिखावेंगे,
भ्रम आनन्द रूप होंगे सब, काम प्रेम बन जावेंगे।

(७४)

रहा नहीं दिन अब सन्ध्याकी पृथ्वी पर छाया छाई
जा तट—पर घट भर लानेकी मेरी वेला भी आई
जलके कलकल कलकल रवसे सायङ्कालिक भरा पवन
आह पुकार रहा है मुझको "तममें-से आजा ए जन।"
कोई साथी है न विजन पथ पवन झपाटे चलते हैं
बडे वेग से सलिल नदी के ऊँचे बहुत उछलते हैं
पीछा घर पहुँचूगा या क्या भान नहीं मुझको इसका,
किसको मिलनेको जाना है ज्ञान नहीं मुझको इसका।
नदी तीर पर लगी हुइ है वहीं एक नन्ही नैया
अनजाना जन बैठा उसमें बीन बजे "दैया! दैया!"

(७५)

जो कुछ दे तू हमें उसीसे काम हमारा सरता है,
कमी न होती उसमें कुछ वह पीछा तुझपर फिरता है।
सारितायें सब बहती-बहती जग हितमें आती जातीं,
अविच्छिन्न धारासे तेरे पद धोनेको पर धातीं।
सभी कुसुम अपने सौरभसे सकल सृष्टिको महकाते,
तेरी पूजामें वे अपना महा योग हैं रच पाते।
जग वंचित हो जिससे ऐसी तेरी पूजन-वस्तु नहीं,
जग-हितमें आई न वस्तु वह तव पूजन की नहीं नहीं।
अपने गीतोंमें कवि अपने जो कुछ शब्द सुनाता है,
क्या क्या अर्थ उन्हीं शब्दोंके लोक वृन्द कर जाता है,
स्पष्टभाव, पर, सब गीतोंका एक तुही है, एक तुही;
महालक्ष्य है, परम लक्ष्य है, चरम लक्ष्य है, तुही, तुही।

(७६)

जीवन-स्वामिन् तेरे क्या नित सन्मुख खडा रहूँगा मैं ?
हाथ जोड ईश्वर क्या तेरे सन्मुख खडा रहूँगा मैं ?
नीचे तेरे अनन्त नभ के किसी विरल विजन-स्थल पर,
नम्र-हृदय प्रेमाश्रु-पूर्ण क्या सन्मुख खडा रहूँगा मैं।
तेरे इस विचित्र तर जग के जीवन रण में डँटा हुआ,
विश्वजनों के भीतर क्या तव सन्मुख खडा रहूँगा मैं !
राजराज जब मम तव जगमें कार्य पूर्ण हो जावेगा,
तब एकाकी नीरव क्या तव सन्मुख खडा रहूँगा मैं !

(७७)

तू देव मेरा प्रभु जानता हूं, खडा हुआ दूर इसीलिये हूं ।
है अन्तरात्मा, न तुझे पिछाना, होता न यों है तव पास आना ॥
है तू पिता, मान झुका रहा हूं, तेरे पदों में निज सीस को मैं,
न मित्र जाना तुझ को, इसी से, न हाथ से हाथ मिला रहा हूं ॥
नीचे जहां तू अवतार ले के, बता रहा है तब मैं स्वयं हूँ ।
होता खडा हूं न वहाँ तुझे ही मैं मान के मीत गले लगाने ॥
तू बन्धु ही है यह जान के भी, देता नहीं अंश उन्हें कहीं मैं ।
यों बान्धवों को न विभाग देके, तुझे न देता कुछ भी विभो हूँ ॥
देता सहारा न उन्हें जरा भी, होता न साथी सुखदुःखमें मैं,
यों दूर होके तुझसे हरे मैं, वृथा बिता जीवन को रहा हूँ ॥

(७८)

नई सृष्टि जब हुई नया ग्रह-तारा-मंडल,
नये तेजसे चमकउठा नभ झलमल झलमल ।
देव-सभा तब मिली लगे गाने यों सुर सबः—
"क्या है पूर्णानन्द अहा! क्या छबि! क्या उच्छव
उस देव सभामें कह उठा इतने ही इक सुर वहाँ,
वह ज्योति मालिका-का शिखर गया एक तारा कहाँ ॥
यह सुन एकाएक गान सब के सब छूटे,
चौंके, वीणातार सुनहली सारे टूटे,
आसमानको देख देख यह वचन उचारा,
गया कहाँ नक्षत्र हमारा वह अति प्यारा,

उसके ऐसा तो था वही और नजर आता नहीं,
हिय-नयना-नन्दन तेज भी अन्यत्र न पाता कहीं ॥
उसी दिवस से खोज उसी की होती निसदिन,
जगभर है बे-चैन नींद लगती न एक छिन,
उसकी ही धुन लगी हुई है बडी निरन्तर,
आपस में सब बात एक ही करते मिलकर,
है इक सच्ची तो बात यह एक वही क्या खोगया,
सबका, सब आनन्द ही, अरे फिर फिरा होगया ॥
रात शान्त गंभीर महा दिस दिस में छाई,
जगमग-जगमग ज्योति सकल तारा की भाई,
प्रकृति सुन्दरी नील-वसन में सज मद माती,
मौन वचन कह रही मनों कुछ कुछ मुसकाती,
उस छिनभासी की खोज है इन थिरतारों में विफल,
जहाँ अखण्डानन्द है जहाँ दिव्य छबि है सकल ॥

(७९)

प्रियजन इस जीवन में तेरा होवे जो न मुझे दरशन,
'तेरा दरशन नहीं हुआ है' व्याकुल सदा रहे यों मन ।
भडकी रहे विरहकी अगिया ठंडी हो जावे न कभी,
क्या सोनेमें क्या सपनेमें टूट न जावे लगी लगन ।
जग बजार होवे मुट्ठीमें धन—कुवेर भी हो—जाऊँ,
तो भी बना रहे मन तुझ बिन पाया नहिं कुछ जीवन—धन,
भूल न जाऊँ रहे वेदना रहूँ चाहता मधुर—मिलन,

क्या सोनेमें क्या सपनेमें टूट न जावे लगी लगन,
पथ पर बैठ रहूँ आलसकर सहज धूलिकी सेज बिछा
सारा मार्ग पडा है बाकी मन में होती रहे रटन,
भूल न जाऊँ रहे वेदना रहूँ चाहता मधुर मिलन,
क्या सोनेमें क्या सपनेमें टूट न जावे लगी लगन,
आनन्दोत्सव नृत्यगानमें हँसी—खुशीमें खेलोंमें,
सज्जित-गृहमें तुझे न नौता हटे हृदय से यह न जलन,
भूल न जाऊँ रहे वेदना रहूँ चाहता मधुर मिलन,
क्या सोनेमें क्या सपनेमें टूट न जावे लगी लगन,

(८०)

ओ मेरे रवि ! सदा प्रकाशित बनकर शरद शेष में घन,
आसमानपर घूम रहा हूँ इधर उधर बिन ही कारन ।
तव स्पर्शने अबतक मेरा तन न बाष्पमय पिघलाया,
और एक-रस करके तेरी परम ज्योतिमें न मिलाया ।
तुझसे बिछड़ा हुआ विकल हूँ समय काटता हूँ गिनगिन,
बरस, मास, पखवाडे, हप्ते, दिन-दिन, घडी घडी, छिन छिन,
यदि तेरा अभिलाष यही है, यदि है यह लीला तेरी,
क्षण-भंगुर निसःत्व देह हूँ न कर रंग भरते देरी ।
अद्भुतता सबको दिखलाऊँ रंगोंमें सुवरन भर दे,
अनुपम पवन-वेगपर बिठला जग-पर छाया तो कर दे ।
होवेगी जब रात खेल तू चाहेगा जब बन्द किया,
मोह रात की महा निशाके तममें दूँगा लगा हिया ।

रम्य उषाके रंगोमें या परिवर्तित हो जाऊँगा,
या प्रभात की विमल प्रभामें निर्मल हो मिल जाऊँगा ॥

(८१)

आलसमें मैं पडा रहा मम वृथा गये दिन
पछताथा सदा वृथा पर गई न एक छिन
जीवन भर का महा व्यवस्थापक है विभु तू ही,
पल–पल का है प्रभो नियन्ता तू ही तू ही ।
सर्वव्यापिन् तू बीजों में अङ्कुर करता,
कलियोंके कर कुसुम कुसुम में फल तू भरता ।
फलमें कुछ माधुर्य अनोखा ही प्रकटाता,
नयेनये यों रंगरूप, रस, सब; दरसाता ।
मैं अपनी आलस्य सेज पर अलस पडा था,
पडा रह गया काम यही बस सोच बडा था ।
सँभल उठा जो प्रात, बाग अपना तो सारा–
हराभरा फलफूल लदा अति रम्य निहारा ॥

(८२)

तेरे करमें काल अनन्त बसे प्रभु मेरे,
गिन सकता है कौन काल के पल छिन तेरे ।
रात-दिवस के चक्र घूमते ही जाते हैं;
जुग-जुग कुसुम-समान विकसते मुरझाते हैं !

होकर पूर्ण-गँभीर प्रतीक्षा अतिशय करना,
तू ही मेरे नाथ जानता धीरज धरना ।

वन की लघुतम कुसुम कलीको पूर्ण बनाते,
बरस सैंकडों आयोजन में तेरे जाते ।

समय कहाँ है हमें ? हाथ में समय यहाँ है ?
करता चंचल समय प्रतीक्षा कभी कहाँ है ?

मिले समय को तुरत काम में लेने को हम
रहते इससे व्यग्र, समय खो नहिं सकते हम ।

पर जो आता वही वितण्डावाद बढ़ाता,
खोता अपना समय समय मेरा बिनसाता ।

यों तव चिन्तन-समय मुझे मिल ही नहिं पाता,
पूरा दिन भर वृथा विवादों में ही जाता ।

अस्त हो गया सूर्य जान कर घबराता हूँ,
अवसर रहा न हाथ, हृदयमें पछाताता हूँ,
"द्वार बन्द हो गया नहीं हो" अकुलाता हूँ,
दौड़ा तेरे द्वार ओर ईश्वर ! आता हूँ ।

पर पाता हूँ, मुक्त द्वार तेरा पाता हूँ,
तुझे लिवाने खड़ा प्रतीक्षामें पाता हूँ,
बड़े वेगसे आता हूँ हरि ! मैं आता हूँ !
समय बना है प्रेम-भेट रख मिल जाता हूँ ।

(८३)

तेरे कनक-थालमें अपनें दुखके अश्रु सजा दूँगा,
मैया तेरे लिये अश्रुके मुक्ताहार बना दूँगा ।
सूर्य चन्द्र नक्षत्र पैरके जेवरमें चमकें-दमकें,
तेरे हियका हार बने वह अलङ्कार अँसुवा दूँगा ।
हैं तेरे धन-धान्य सभीये इन को तू दे या ले-ले,
मेरे तो हैं दुख के अँसुवा क्यों कर भला भुला दूँगा ।
निज आसूँ का हार बना कर भेट तुझे ही दूँगा मैं,
दे प्रसाद तू ही ले-सकती यह मम अहं निभा दूँगा ।

(८४)

अहरह तेरा विरह भरा है भुवन-भुवनमें,
लेते क्या क्या रूप विपिन-गिरि-जलधि-गगनमें ।
निशिभर अनिमिष विरह-झलक है तारा-गनमें,
विरह-गान है पान-पानमें सावन-घनमें ।
तव वियोग ही विविध वेदनायें प्रकटाता,
प्रेम वासना शोक हर्ष घर-घरमें छाता ।
द्रवा द्रवा कवि-हृदय विरह वह भाव जगाता,
जगभरमें बस विरहगीत ही ज्यों मँडराता ॥

(८५)

प्रभु घरसे जिस रोज चले थे बडे वीर दल,
कवच कहाँ थे कहाँ शस्त्र थे थें क्या छल—बल ।

सभी ओरस बहुत हुए थे घात अनर्गल,
दिखते थे असहाय दरिद्री-से वे पल पल ।
वे ही सज धज काम बजा लौटे फिर प्रभु घर,
धनुष बाण तलवार साज सब दिये यहीं धर ।
शान्त भावसे चुप्पी साधे तजे सकल फल,
छोड छाड बल यहीं, दिये खाली हाथों चल ।

(८६)

तूने गृह-द्वार पर भेजा मृत्यु-दूतको आज प्रभो,
वह आया कर पार अगम-निधि ले तेरा संदेश प्रभो !
घोर अँधेरी रात हृदय मम भय-भारातुर धडक रहा,
कर ले दिया, खोल दर, स्वागत तदपि कहूँगा उसे प्रभो !
पूजूँगा कर जोड, उसे जल व्याकुल नयनों का दूँगा,
और चढा दूँगा चरणों पर प्रान, दूत तव जान विभो !
वह तव हुकम बजा लौटेगा मम प्रभात पै छाया छा,
तब मैं निजको भी तव पद में सहसा दूँगा चढा प्रभो !

(८७)

खोज रहा हूँ अत्यातुर हो घरमें जहाँ तहाँ उसको,
कोना कोना देख लियापर कहीं नहीं पाया उसको ।
मेरे छोटे-से घरमें हैं स्थान प्रभो कुछ ऐसे ही,
गई वस्तु मिलती न वहां फिर, खोजो क्यों न सदा उसको,
है अनन्त घर तेरा, तेरा स्थान विश्वमय विलस रहा,
नाथ ! उपस्थित यहाँ हुआ हूँ हेर ढूंढ लेने उस को ।

तेरे सान्ध्य-गगनके नीचे खडा हुआ हूँ भर आँखें,
तेरे मुख को देख रहा, मैं, चाह रहा, उसको उसको ।
कोई सुख, दुख आस पिपासा यहाँ न होते नास कभी,
इसीलिये पीड़ित हिय लाया अपना, पाने को उसको ।
देदे नाथ डुबा दे मेरे हिय को उसी अमृतरसमें,
जग भरमें ज्यों मैं पाजाऊं घर में जो खोया उसको ॥

(८८)

हे हे देव ! जीर्ण मन्दिरके, वीणाके टूटे सब तार,
तेरे गुण गानोंपर बजकर अब नहिं करते हैं झंकार ।
शान्त पवन तव आस पास है, झालर शंख न बजते हैं,
सन्ध्या-समय-आरतीकी वे अब न घोंषणा करते हैं ।
ये वसन्तके रम्य वायुकी लहरें रह रह कर आतीं,
तेरे निर्जन मन्दिरमें उन कुसुमोंकी खबरें लातीं ।
जो अब तेरी प्रिय पूजामें नहीं चढ़ाये जाते हैं,
शीतल मन्द पवनमें अपनी भीनी सौरभे छाते हैं ।
तेरा अति प्राचीन पुजारी भोग हेत दिन भर फिरता,
चेष्टायें उसके पानेकी भाँति-भाँति से बहु करता ।
सन्ध्या समय धूलि आभा तम जब मिलते हैं तब फिरता,
खाली हाथों भूखा थाका मन्दिर पर फिर आ गिरता ।
हे हे देव ! जीर्ण मन्दिरके तव ढिंग से उत्सवके दिन,
कितने विफल निकल जाते हैं जिनको मैं नहिं सकता गिन ।

पूजाकी रातों पर-रातें जातीं खाली चलीं सभी,
तेरे पास एकभी दीपक लगता है नहिं कहीं कभी ।
सुचतुर शिल्पी नूतन नूतन प्रतिमा निर्मित करते हैं,
समय गये विस्मृति-सागर में उन्हें विसर्जित करते हैं ।
किन्तु निरन्तर हुआ उपेक्षित देव जीर्ण-मन्दिर का तू,
पूजासे वंचित रहता है सभी तरह बस तूही तू ।

(८९)

शब्दाडम्बर सभी छोड़ दूँ श्रुति–रहस्य–मय बन जाऊँ,
मेरे स्वामीकी इच्छा है हृदय गानमें प्रकटाऊँ ।
राजहाटमें जाते हैं जन क्रय–विक्रय करते हैं सब,
बड़ा काम है, दो पहरी है, पर रुखसत होता हूँ अब ।
अच्छा तो इस असमयमें भी फूल उठे मेरा उद्यान,
मधु–मक्खी के गुंजारवके सभी ठौर छा जावें गान ।
कुसुम कुसुमका अनुपम सौरभ जहाँ तहाँ भर भर जावे,
सबके हिय में हर्ष उदय हो मन–वांछित फल जग पावे ।
सुख, दुख हर्ष शोक, द्वन्द्वोंके भले–बुरे बीते मम दिन,
अलस समयका साथी हियको खींच रहा है छिन–ही–छिन,
इसी समय क्यों मुझे न जाने बुला रहा वह बुला रहा,
काम कौनसा रुका पडा है अभी मुझे जो बुला रहा ।

(९०)

तेरे गृह-द्वार पर आकर मौत खट खटावेगी जब,
प्रियवर मुझको यह बतलादे भेट करेगा क्या तू तब ?

मैं अपने उस अतिथि-देवको जीवनपात्र भरा दूँगा,
किसी तरह भी खाली हाथों कभी लौटने नहिं दूँगा ।
मेरे गृह-द्वार पर आकर मौत खट खटावेगी जब,
होकर राग-द्वेष हीन मैं सरबस भेट धरूँगा तब ।
शरद वसन्त ग्रीष्म वर्षामें स्याम सुबह महनत कर कर,
बरसोंमें जो किया इकाट्ठा दूँगा सभी समर्पित कर ।

(९१)

मरण, मरण, मम मरण, बात तेरे सँग होना,
इस जीवनकी पूर्ण पूर्णताका है होना ।
आ, आ, बातें छेड, मार्ग मैं देख रहा हूँ,
सुख दुख सारे इसीलिये मैं भोग रहा हूं ।
मैं जो कुछ हूँ और पास मेरे है जो कुछ,
बहते तेरी ओर प्रेम आकाङ्क्षा सब कुछ ।
तेरा मुझ पर आ अपाङ्ग ज्यो अन्त्य गिरेगा,
मेरा जीवन सदा सदा को तव हो लेगा ।
पुष्प-पुष्पकी गूँथ बनाई है वरमाला,
पहनावेगी वधू स्वयं, वरको वरमाला ।
करके पाणि-ग्रहण छोड घर को जावेगी,
विजन रैन में नाह–हृदयसे लग जावेगी ।

(९२)

पृथ्वी का यह दृश्य देखना एक दिवस पूरा होगा,
डाल नयन पर परदा जीवन चुपके–से चलता होगा ।

तारों भरी रात वह होगी, प्रात पूर्व--सा वह होगा,
सँमद-लहर--सा घर घर सुख दुख बार बार बहता होगा ।
मैं अपने इस अन्त-काल--पर जब विचार कुछ करता हूँ,
सीमा हटती मृत्यु--विभामें विश्व--रत्न तब लखता हूँ ।
और जानता हूँ उसमें का लघुतर थल भी दुर्लभ है,
थोडे-से-थोडा जीवन भी दुर्लभ है अति दुर्लभ है ।
जिन चीजोंको अबतक मैंने चाहा उनको जाने दे,
जिन चीजोंको पाया प्यारे ! उनको भी हट जाने दे ।
जिन चीजोंकी अबतक करता रहा तिरस्कृति सभी प्रकार,
अब उन पर ही मम होने दे पूरा प्यार और अधिकार ।

(९३)

छुट्टी मिली है मुझको विदा दो, हे भाइयो मैं नमता तुम्हें हूँ ।
कहो कहो 'हो शिव मार्ग तेरा' सभी कहो मैं यह जा रहा हूँ ।।
हुए पडोसी चिरकालसे थे, दिया लिया आपस में सदा था ।
पवित्र मित्रो जितना दिया था, विशेष मैंने उससे लिया है ।।
लो चाबियाँ ये सब दे रहा हूँ, स्वगेहसे हाथ उठा रहा हूँ ।
प्रसन्न हो, अन्तिम राम राम, कहो नमस्कार, गहो, सुखी हो ।।
उषा उगी, रात चली, प्रभात-प्रकाश छाया, मम कोटरी में ।
दिया बुझा, श्रीश बुला रहा है, तैयार हूँ मैं अबजा रहा हूँ ।।

(९४)

मेरे जाते समय सभी मिल अबके दो जय जय धुन कर,
कह दो 'शिवाः सन्तु पन्थानः' कह दो सिद्ध मनोरथकर ।

उषा रँगीली छाई नभ पर रंग-बिरंगी प्रभा खिली,
स्वच्छ देख पडता मग मुझको मेरा अति सुन्दर मनहर ।
अपने सँग क्या ले जाता हूँ इसका सोच करो मत तुम्ह,
खाली हाथों सफर करूँगा आशा पूरित ले अन्तर ।
माला पहने हुए मिलनका वेश सजे मैं जाऊँगा,
दिव्य सुन्दरीका दूल्हा हो मलिन-पथिकका रँग-ढंग हर,
जान रहा हूँ बहुत मार्गमें विपत-विघ्न-बाधायें हैं,
सच कहता हूँ मुझे न उनका नाममात्रको भी है डर ।
वरयात्रा मेरी पहुँचेगी चमकेगी सन्ध्या तारा,
छा जावेगा राज-द्वार की मधुर मधुर मुरलीका स्वर ।

(९९)

आया हूँ कब इस जीवन में पहले पहल न मुझे खबर,
किस रहस्यमय महाशक्तिने प्रकटाया है, नहीं खबर ।
मझ रातोंकी विपिन कलीकी भाँति हुआ हूँ मैं विकसित,
इस रहस्यमय जगमें कैसे, इस की मुझ को नहीं खबर ।
प्रातःकाल हुए पर मैंने जब प्रभात आँखों देखा,
तब मुझको मालूम हुआ यह मैं कुछ हूँ न अपरिचित नर ।
उस अज्ञेय शक्तिने जिसके नामरूप कुछ ज्ञात नहीं,
मेरी माँ-का-रूप धार कर मुझको गोद लिया मुद धर ।
इसी तरहसे मृत्यु हुए भी कोई शक्ति प्रकट होगी,
सदासदाका जिसका मुझसे परिचय होगा उत्तम तर ।

मुझको निज जीवन प्यारा है मृत्यु न प्यारी होगी क्यों,
इसको तो मैं भोग रहा हूँ उसपर भी है गड़ी नज़र।
माँ जब शिशु को दहने स्तनसे दूर करे तब शिशु रोता,
हो जाता आनन्द मग्न है बायाँ स्तन देते ही पर ॥

(९६)

जानेके दिन हो मेरा यह कहते जाना,
जो देखा जो पाया उसकी है तुलना ना,
इस ज्योति-स्सागरमें शतदल कमल बिराजे,
कर उसका मधुपान धन्य मम जीवन राजे,
अहा धन्य है मधुर मधुरतर रसका पाना,
जानेके दिन हो मेरा यह कहते जाना।
विश्वरूपके लीलागृहमें क्रीडा की है,
आँखें भर भर उस अरूपकी झाँकी की है,
उस अ-परसका कर आलिङ्गन लिपट रहा हूँ,
अंग अंगमें प्राण प्राणमें मिला चुका हूँ,
पाया ऐसा योग मिला अनमोल खजाना,
जानेके दिन हो मेरा यह कहते जाना।

(९७)

मैं खेलता था जब साथ तेरे, मैंने न पूछा तब कौन है तू।
मुझे नहीं था भय, लाज थी ना, मैं खेलमें धूम मचा रहाथा॥

पुकारता था अति भोर में ही, मुझे जगाने प्रिय मित्र-सा तू ।
मुझे लिये तू तब घूमता था, सानन्द नाना बन-जङ्गलोंमें ॥
तू ही सुनाता तब गान भी था, मैं जानता था उनके न मर्म ।
मैं गुन् गुनाता तव साथ ही था, अत्यन्त मेरा हिय नाचता था ॥
जो आज एकाइक खेल बीते, मैं देखता हूँ नभ चन्द्र तारे ।
है स्तब्ध, है नीरब, नम्रलोक, तेरे पदों को लखता खडा है ॥

(९८)

हार मान जय हार तुझे ही पहना दूँगा,
अपने छलके बलसे कबतक विलग रहूँगा ।
है यह पूर्ण--ज्ञान, दर्प मम नस जावेंगे,
जीवन बन्धन टूट प्राण ये फट जावेंगे ।
शून्य हृदय यह फटी बाँसरी-सा सिसकेगा,
करुणा कर के पत्थरका भी दिल पिघलेगा ।
खुल जायेंगे निश्चय थरथर कर शतदल-दल,
छुपा रहेगा कभी नहीं मधु चिर दिन चिर पल ।
नील गगनसे दीठ किसीकी आन पडेगी,
घर के बाहर चुपकेसे वह बुला रहेगी ।
प्यारे उस दिन कुछ भी बाकी नहीं रहेगा,
मेरा जीवन तेरे पदमें अन्त लहेगा ॥

(९९)

मैं काम सारे जब छोड दूँगा, है सत्य, लेगा निज हाथ में तू ।
कर्तव्य सारा परिपूर्ण होगा, मेरी वृथा है सब दौड-धूप ॥

हो जा अभी निष्क्रय, चित्त मेरे, ले हार को तू चुपचाप मान ।
तेरी हुई जो स्थिति है, उसी में, बैठा सदा ही रह, भाग्य जान ॥
झोके हवाके अति अल्प खा-के, मेरे बुझे दीपक बार बार ।
उन्हें लगाते करके प्रयत्न, मैं भूलता हूँ सब कार बार ॥
परन्तु पाके अब बुद्धिमत्ता, तेरे लिये आसन को बिछाके:—
तमिस्रमें आँगन-के प्रतीक्षा, बैठा हुआ मैं करता रहूँगा ॥
हे नाथ मेरे जब काम ना हो, आना तभी नेक दया दिखाना ।
मालूम होवे न कभी किसी को, आ बैठना यों चुप से वहां पै ।

(१००)

रम्य—रूप-सागर में मैंने गहरा गोता खाया है,
मिल अरूप अनुपम जावेगा मोती ध्यान लगाया है ।
बन्दर बन्दर नहीं फिरूँगा जीर्ण शीर्ण नौका ले अब,
झेलूँ जलधि थपेडे ऐसी मुझमें सामर्थ्य न है अब ।
अब तो समय जान पडता वह सुधा-सलिल तल में पैठूँ,
काम चुका दूँ सारे मर कर अमर शीघ्र ही बन बैठूँ ।
सुन नहिं पावें कान जिन्हें वे होते हों संगीत जहाँ,
मेरे प्राणोंकी वीणाके अनहद होंवे नाद वहाँ ।
उस अनन्तके शेष-स्वरमें मिल जावें मेरे सब स्वर,
मेरी हृदय-बीन के स्वरकी मिले उसी में अन्त्य लहर ।
जो नीरव है उस के पद में नीरव निज वीणा धर दूँ,
नीरवताके परम रसिक को नीरव भेट गिरा कर दूँ ॥

५

(१०१)

जीवनभर, मैं इन गीतोंसे रहा खोजता हूँ तुझ को,
घर घर, द्वार द्वार, मंजिल पर, पहुँचाया इनने मुझ को ।
इनसे ही की आत्म-निरीक्षा, अन्तर्बाह्य सभी मैंने,
इनसे ही होवेगा तेरा चरण-स्पर्श कभी मुझको
इन गीतोंके द्वारा अबतक जो कुछ सीखा, सीखा है,
अतिशय गुप्त धर्मके मारग बतलाये इनने मुझको ।
मेरे हृदय-गगनमें मेरे ठीक दृष्टि पथ-पर इनने,
रम्य प्रकाशित प्यारे अनुपम दिखलाये तारे मुझको ।
दिनभर देखा अति रहस्य-मय सुख-सुख देशोंमें इनने,
किस महेलमें ला बिठलाया सन्ध्यामें आखिर मुझको ।

(१०२)

तेरा जान कार हूँ मैंने लोकलोकको बतलाया,
मेरी कृतियोंमें तेरा ही उनको चित्र नजर आया ।
वे आते हैं और पूछते मुझसे हैं वहाँ कौन बता,
क्या उत्तर दूँ उनको इसका मुझको कुछ भी नहीं पता ।
मैं कहता हूँ उन्हें असलमें मैं कुछ बता नहीं सकता,
मुझे दोष दे फिरें दुखी वे और वहाँ तू है हँसता ।
मैंने नाना तव कहानियाँ इन गीतोंमें गाई हैं,
कर न सका प्राणोंमें गोपन निकल आप ही आई हैं ।

आते हैं जन और पूछते इनका क्या है अर्थ बता,
क्या उत्तर दूँ उनको इसका कुछ भी समझ नहीं पडता ।
मैं कहता हूँ स्वयं अर्थ को आह! कौन बतला सकता,
हँसी उडा मेरी फिरते वे और वहीं पर तू हँसता ॥

(१०३)

एक नमस्कृतिमें मेरे प्रभु एक नमस्कृतिमें केवल,
तुझसे हो सम्बन्ध स्वयं हरि एक नमस्कृति में केवल,
तेरे जगमें मेरी सब तनु तव पद सन्मुख लौट पड़े,
एक नमस्कृतिमें प्यारे प्रभु एक नमस्कृतिमें केवल ।
रसमय सावन-घन-सम मन नम झुके भवन द्वारे तेरे,
एक नमस्कृतिमें मेरे प्रभु एक नमस्कृतिमें केवल ।
विविध स्वर-मय गीत धार मम मिले आत्म नीरवनिधिमें,
एक नमस्कृति में मेरे हरि, एक नमस्कृतिमें केवल ।
मानसपर ज्यों हंस जाय त्यों मम हंसा तव ढिंग आवे,
एक नमस्कृतिमें मेरे हरि एक नमस्कृति में केवल,
महामरणसे परे प्राण मम तेरे में लय पाजावें,
एक नमस्कृतिमें मेरे हरि एक नमस्कृति में केवल ॥

समाप्त.